186

# भारत सरकार

भारत का विधि आयोग

की

## पर्यावरण न्यायालय गठित करने के प्रस्ताव

विषय पर

## एक सौ छियासीवीं रिपोर्ट

सितम्बर, 2003

न्यायमूर्ति
एम॰ जगन्नाथ
अध्यक्ष,

भारत का विधि आयोग
शास्त्री भवन
नई दिल्ली-110001
दूरभाष: 3384475
निवास:
1 जनपथ
नई दिल्ली-110011
दूरभाष: 3019465

अर्धशा॰सं॰ 6(3)84/2003-एल॰सी॰ (एल एस)

प्रिय श्री अरूण जैटली,

मुझे, ''पर्यावरण न्यायालय गठित करने के प्रस्ताव'' विषय पर विधि आयोग की 186वीं रिपोर्ट अग्रेषित करते हुए अपार हर्ष हो रहा है।

भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए चार अभिनिर्णयों, अर्थात एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ:1986(2) एससीसी 176, इंडियन काउंसिल फार एनवायरमेंटल लीगल एक्शन बनाम भारत संघ: 1996(3) एससीसी 212, ए.पी. पोल्यूशन कन्ट्रोल बोर्ड बनाम एम.वी. नायडू: 1999(2) एससीसी 718 और ए.पी. पोल्यूशन कन्ट्रोल बोर्ड बनाम एम.वी. नायडू II: 2002(2) एससीसी 62, में अभिव्यक्त किए गए विचारों के अनुसरण में, विधि आयोग ने ''पर्यावरण न्यायालय'' विषय का विस्तृत अध्ययन किया है। उपर्युक्त में से तीसरे अभिनिर्णय में, न्यायिक और तकनीकी/वैज्ञनिक आदानों के साथ, जैसाकि हाल ही में इंग्लैंड में लार्ड वुल्फ द्वारा किया गया है, और आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड तथा अन्य देशों में पर्यावरण न्यायालय विधानों के विद्यमान स्वरूप को ध्यान में रखते हुए, बहु आयामी पर्यावरण न्यायालय के विचार का निर्देश किया गया था। विज्ञन और प्रौद्योगिकी के जटिल विवाद्यक तथ्य को ध्यान में रखते हुए, जो पर्यावरणीय मुकदमों में और विशेषकर वायु और जल से प्रदूषण को समाप्त करने के मामलों में उत्पन्न होते हैं, बहुत से देशों में अब यह स्वीकार किया गया है कि न्यायालयों में केवल न्यायिक सदस्य ही नहीं होने चाहिए अपितु तकनीकी और वैज्ञनिक विशेषज्ञें के सदस्यों का एक सांविधिक पैनल भी होना चाहिए। इस संदर्भ में, हम डा॰ मैलकम ग्रांट यूके (2000) की हाल ही की रिपोर्ट तथा रॉयल कमीशन (23वीं रिपोर्ट मार्च, 2002) की रिपोर्ट का भी निदेश कर सकते हैं।

न्यायपीठ में उपलब्ध न्यायिक और तकनीकी आदानों के साथ आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड में पर्यावरण न्यायालय, समरूपी जल अधिनियमों, वायु अधिनियमों तथा शोर अधिनियमों और पर्यावरण से संबंधित विभिन्न अधिनियमों के अंतर्गत पारित आदेशों के विरुद्ध, अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य करते हैं और इन्हें मूल अधिकारिता भी प्राप्त है। इन्हें सिविल न्यायालय की सभी शक्तियां प्राप्त हैं। कुछ को तो दांडिक न्यायालयों की शक्तियां भी प्राप्त हैं।

अत:, आयोग ने एक रिपोर्ट तैयार की है (प्रति संलग्न है) जिसमें अध्याय एक से अध्याय दस तक अंतर्विष्ट है और जिनमें प्रत्येक राज्य में (राज्यों के ग्रुप में) ''पर्यावरण न्यायालयों'' के बारे में विधियों की पुनरीक्षा की गई है तथा अध्याय नौ और अध्याय दस में यह सुझाव दिया गया है कि देश में उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के भार को कम करने के लिए इन न्यायालयों की स्थापना की जानी चाहिए। ये न्यायालय तथ्य और विधि संबंधी न्यायालय होंगे और सिविल न्यायालय की मूल अधिकारिता वाली सभी शक्तियों का प्रयोग कर सकेंगे। इन न्यायालयों को जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 और पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के अधीन संबंधित अधिकारियों द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध, एक ऐसे सक्षमकारी उपबंध के साथ कि केन्द्रीय सरकार इन न्यायालयों को पर्यावरण से संबंधित अन्य अधिनियमों के अधीन भी अपीलीय न्यायालय अधिसूचित करेगी, अपीलीय न्यायिक शक्तियां भी प्राप्त होंगी। 1972 के स्टॉकहोम के तथा 1992 के रिओ

सम्मेलनों के निर्णयों को प्रभावी बनाने के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 253, अनुसूची सात की सूची-I की प्रविष्टि 13क के साथ पठित, के अधीन ऐसी विधि बनाई जा सकती है।

आयोग के विचार में, राज्य स्तर पर प्रत्येक राज्य के सभी नागरिक प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालयों का लाभ उठा सकेंगे।

तथापि, समाचार-पत्रों में हाल ही में यह समाचार प्रकाशित हुए हैं कि सरकार ने निर्णय किया है कि पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा 3 के अधीन न केवल क्षेत्रीय प्राधिकरण गठित किए जाएंगे (जिस पर कोई आपत्ति नहीं होगी) अपितु दिल्ली में एकल अपीलीय निकाय (जिसमें अन्य के साथ-साथ उच्चतम न्यायालय का एक न्यायाधीश होगा) गठित किया जाएगा। यह समाचार भी प्रकाशित हुआ है कि इस प्रस्ताव को मंत्रिमंडल ने अपनी स्वीकृति दे दी है।

आयोग का विचार है कि यदि दिल्ली में एकल अपीलीय प्राधिकरण गठित किया जाता है, जैसाकि प्रस्ताव किया गया है तो, देश के दूरस्थ भागों में रहने वाले नागरिकों के लिए यहां पहुंच पाना लगभग असंभव होगा और पर्यावरण से संबंधित गंभीर मामलों पर ध्यान नहीं दिया जा सकेगा क्योंकि न्यायालयों में पहुंचने का प्रभावी अधिकार नहीं रह जाएगा। इसके अतिरिक्त, सरकार के प्रस्ताव में, केन्द्रीकृत अपीलीय प्राधिकरण में तकनीकी/वैज्ञानिक आदानों के लिए कोई उपबंध नहीं किया गया है। इस पर भी, दिल्ली स्थित कथित न्यायालय जल अधिनियम या वायु अधिनियम के अधीन अपीलीय प्राधिकरण नहीं बन सकेगा, यह केवल पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के प्रयोजनों के लिए अपीलीय प्राधिकरण मात्र रह जाएगा। जैसाकि वर्तमान में है, जल अधिनियम और वायु अधिनियम के अधीन अपीलीय प्राधिकरण केवल सरकारी अधिकारी हैं और इस प्रकार निर्णय लेने की प्रक्रिया में न तो न्यायाधीश ही अंतर्ग्रस्त है और न ही तकनीकी विशेषज्ञ और उनके द्वारा पारित आदेशों को अनुच्छेद 226 या अनुच्छेद 32 के अधीन चुनौती दी जाती है। ऐसा कोई कारण नहीं है कि इन दोनों अधिनियमों के अधीन अपील प्रत्येक राज्य में स्थित न्यायिक निकाय के समक्ष क्यों नहीं की जानी चाहिए।

दूसरी ओर, विधि आयोग ने इस रिपोर्ट में एक बहुत विस्तृत योजना का प्रस्ताव रखा है। राज्य स्तर पर पर्यावरण न्यायालय एक न्यायिक निकाय होगा जिसमें पीठासीन/सेवानिवृत्त न्यायाधीश, 20 वर्ष से अधिक अनुभव वाले बार के सदस्य से गठित होंगे जिसकी सहायता के लिए प्रत्येक राज्य में विशेषज्ञों का एक सांविधिक पैनल भी होगा। पर्यावरण से संबंधित सभी मामलों के लिए यह मूल अधिकारिता वाला न्यायालय होगा और सभी तीनों अधिनियमों, अर्थात जल अधिनियम, वायु अधिनियम और पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986, के अधीन यह अपीलीय प्राधिकरण होगा जो उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय के भार को कम कर सकेगा। इसके अतिरिक्त, प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध एक सांविधिक अपील सीधे ही उच्चतम न्यायालय में की जा सकेगी। हमारे विचार में यह योजना सरकार के दिल्ली स्थित एकल अपीलीय न्यायालय से बेहतर है और यहां प्रभावित पक्षकार अपना प्रभाव भी नहीं दर्शा पाएंगे।

अतः हम आपसे अनुरोध करते हैं कि आप इस विषय पर कोई भी विधि बनाने से पूर्व पर्यावरण मंत्रालय से शीघ्रातिशीघ्र इस विषय में आगे चर्चा करें।

सादर,

भवदीय,

ह॰

(एम॰ जगन्नाथ राव)

श्री अरूण जैटली,
माननीय विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार,
नई दिल्ली।

## अनुक्रमणिका


| अध्याय | | | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| एक | – | प्रस्तावना | 1-3 |
| दो | – | विज्ञान की अनिश्चितता और पर्यावरण न्यायालयों की समस्याएं | 4-8 |
| तीन | – | पर्यावरण संबंधी विषयों पर संवैधानिक आदेश और उच्चतम न्यायालयों के निर्णयों का सर्वेक्षण | 9-21 |
| चार | – | अन्य देशों में पर्यावरण न्यायालय | 22-37 |
| पांच | – | भारत में इस समय पर्यावरण न्यायालय या अपीलीय पर्यावरण निकाय | 38-41 |
| छः | – | दो अन्य पर्यावरण अधिकरण और उनमें व्याप्त दोष | 42-44 |
| सात | – | क्या संसद द्वारा अनुच्छेद 252 के अधीन बनाई गई विधि [जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 जैसी] अनुच्छेद 253 के अधीन विधि बनाकर संशोधित की जा सकती है? अनुच्छेद 247 का प्रयोजन क्या है? | 45-51 |
| आठ | – | पर्यावरण न्यायालयों को कतिपय मूलभूत सिद्धान्तों का पालन करना होगा | 52-59 |
| नौ | – | भारत में पर्यावरण न्यायालयों के लिए प्रस्ताव | 60-69 |
| दस | – | सिफारिशें | 70-72 |

## अध्याय-एक

## प्रस्तावना

ए.पी. पोल्यूशन कन्ट्रोल बोर्ड बनाम एम.वी. नायडू: 1999(2) एससीसी 718 मामले में भारत के उच्चतम न्यायालय के निर्णय में, न्यायालय ने पर्यावरण न्यायालय स्थापित करने की आवश्यकता का निदेश किया है जिसे, न्यायिक प्रक्रिया के भाग के रूप में, विभिन्न देशों में न्यायविदों के विचारों पर विस्तृत चर्चा के पश्चात्, पर्यावरण वैज्ञानिकों/तकनीकी दक्षता प्राप्त व्यक्तियों के विशेष परामर्श का लाभ प्राप्त होगा। ए.पी. पोल्यूशन कन्ट्रोल बोर्ड बनाम एम.वी. नायडू: 2001(2) एससीसी 62 मामले में पश्चातवर्ती अनुवर्ती निर्णय में, उच्चतम न्यायालय ने, सर्वांगीण तथा प्रत्यायोजित विधान के अधीन अपीलीय प्राधिकरणों के गठन में गंभीर असमानताओं का निदेश किया [यहां जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974 और वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1981 का निर्देश है] और कहा कि उस राज्य के सिवाय जहां अपीलीय प्राधिकरण में सेवानिवृत्त उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है, अन्य राज्यों में इन प्राधिकरणों के केवल नौकरशाह ही रखे गए हैं। इन अपील प्राधिकरणों की पीठ में न तो न्यायिक और न ही पर्यावरणीय ज्ञान उपलब्ध है। उच्चतम न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया है कि विधि आयोग इन अर्ध-न्यायिक निकायों के गठन में असमानताओं का अध्ययन करे और एक ऐसी नई योजना का सुझाव दे ताकि इन अर्ध-न्यायिक निकायों, जो सरकार के आदेशों सहित, प्रशासनिक और लोक प्राधिकरणों द्वारा पारित आदेशों का पर्यवेक्षण करते हैं, की संरचना में एकरूपता लाई जा सके। उदाहरण के लिए, ये अपीलीय निकाय जल अधिनियम की शर्तों के अनुसार किसी उद्योग को अनापत्ति प्रमाण-पत्र देने या देने से इंकार करने संबंधी प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के निर्णय की जांच कर सकेंगे। अन्य दो पूर्वकालिक निर्णयों में भी पर्यावरण न्यायालय गठित करने का परामर्श दिया गया था। एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ : 1986(2) एस सी सी 176 (पृष्ठ 202) मामले में, उच्चतम न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया था कि क्योंकि पर्यावरण संबंधी मामलों में वैज्ञानिक आंकड़ों का निर्धारण अन्तर्ग्रत होता है इसलिए, ऐसे न्यायनिर्णय के लिए अपेक्षित विशेष ज्ञान को ध्यान में रखते हुए पर्यावरण न्यायालय, जिसमें एक व्यवसायिक न्यायाधीश और दो विशेषज्ञ हों, क्षेत्रीय आधार पर गठित करना वांच्छनीय होगा। पर्यावरण न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील उच्चतम न्यायालय में होनी चाहिए। दूसरे, इन्डियन काउंसिल फार एनवायरो-लीगल एक्शन बनाम भारत संघ : 1996(3) एस सी सी 212 मामले के निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने कहा था (देखे पृष्ट 252) कि पर्यावरण संबंधी मामलों को शीघ्रता से निपटाने के लिए ऐसे पर्यावरण न्यायालय स्थापित किए जाने चाहिए जिन्हें सिविल तथा दांडिक अधिकारिता प्राप्त हो।

हमारा भी यही मत है कि राष्ट्रीय पर्यावरण अपीलीय प्राधिकरण अधिनियम, 1997 के अधीन गठित राष्ट्रीय पर्यावरण अपीलीय प्राधिकरण का कार्य, पर्यावरण प्रभाव निर्धारण संबंधी प्रशासनिक निर्णयों की पुनरीक्षा हेतु एक फोरम उपलब्ध कराने का सीमित प्रयोजन, बहुत थोड़ा सा कार्य था। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्ष 2000 से किसी भी न्यायिक सदस्य की नियुक्ति नहीं की गई है। जहां तक राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995 का संबंध है, आठ वर्ष बीत जाने के पश्चात भी विधान अधिसूचित नहीं किया गया है। क्योंकि यह संसद द्वारा अधिनियमित किया गया था, अधिनियम के अधीन अधिकरण अभी भी गठित किया जाना शेष है। इस प्रकार, ये दोनों अधिकरण अकृत्यिक हैं और इनका अस्तित्व कागजों में ही सीमित है।

उपर्युक्त निर्णय में उच्चतम न्यायालय के विचारों को ध्यान में रखते हुए और विद्यमान अपीलीय प्राधिकरणों की अपर्याप्त मात्रा और उनकी सीमित अधिकारिता के विचार से -- जिनमें न तो न्यायाधीश ही नियुक्त हैं और न ही जिन्हें विशेषज्ञों की सहायता प्राप्त है, आयोग ने इन निकायों के गठन में एकरूपता लाने और उनकी अधिकारिता के क्षेत्र के विचार से स्थिति की समीक्षा करने का प्रस्ताव किया है। इन निकायों को, हमारे विचार से "पर्यावरण न्यायालय" कहा जाना चाहिए और इनमें तकनीकी विशेषज्ञों की सहायता के साथ-साथ न्यायिक सदस्य होने चाहिए। जैसाकि अध्याय नौ में प्रस्ताव किया गया है, हमारी योजना यह है कि प्रत्येक राज्य में एक पर्यावरण न्यायालय होना चाहिए (या कुछ मामलों में एक या अधिक राज्यों के लिए) जो उच्च न्यायालयों से पर्यावरण संबंधी मामलों का भार अपने ऊपर ले सके और इन मामलों पर विशेषज्ञों की सहायता से निर्णय कर सके। प्रत्येक राज्य के स्तर पर एक पर्यावरण न्यायालय का प्रस्ताव इसलिए किया गया है ताकि प्रत्येक राज्य के नागरिकों को अपनी

आपत्ति का समाधान कराना सुलभ हो सके। उक्त न्यायालयों को जल अधिनियम, 1974, वायु अधिनियम, 1981 और पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के अधीन प्राधिकारियों के निर्णय पर अपीलीय अधिकारिता प्राप्त होनी चाहिए। यह प्रस्ताव किया गया है कि पर्यावरण न्यायालय को मूल तथा अपीलीय अधिकारिता का उपयोग करना चाहिए। इसे, प्रतिकर की स्वीकृति देने सहित, वे सभी आदेश देने का अधिकार होना चाहिए जो एक सिविल न्यायालय दे सकता है जैसाकि राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995 में परिकल्पना की गई है।

सांविधिक प्राधिकरणों के ऊपर दिल्ली में एकल अपीलीय न्यायालय स्थापित करने का विकल्प हमें उचित प्रतीत नहीं हुआ है क्योंकि किसी स्थानीय क्षेत्र में रहने वाले किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग के लिए, जिन्हें इन प्राधिकरणों के आदेशों पर आपत्ति हो, अपनी आपत्तियों के समाधान के लिए सीधे दिल्ली पहुंचना व्यवहारिक नहीं होगा। यदि दिल्ली में एकल न्यायालय ही होगा तो, प्रत्येक के लिए यहां पहुंच पाना संभव नहीं होगा और पर्यावरण संबंधी बहुत से मामले अवरूद्ध पड़े रहेंगे और वे न्यायालयों द्वारा निर्णित नहीं हो सकेंगे। न्याय पाना, विशेषकर पर्यावरण संबंधी मामलों में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का अनिवार्य पहलु है। पर्यावरण न्यायालय के गठन के प्रस्तावों पर अध्याय नौ में विस्तार से चर्चा की गई है।

पर्यावरण न्यायालयों के विषय पर विचार करते हुए, जो देश के लाखों लोगों के लिए अत्यंत महत्व का विषय है, हमें निम्नलिखित पहलुओं को ध्यान में रखना होगा:-

(क) वैज्ञानिक निष्कर्षों की आवश्यकता और न केवल विशेषज्ञ परामर्श अपितु न्यायपीठ में ही विशेषज्ञ परामर्श की स्वतंत्र प्रणाली उपलब्ध कराने की आवश्यकता।

(ख) क्या ऐसे स्थानीय क्षेत्र में प्रदूषण का स्तर अनुज्ञेय सीमाओं के भीतर है या क्या प्रदूषण की अनुज्ञेय सीमाओं का उच्चतर मानक स्थापित करने की आवश्यकता है जैसे पर्यावरण संबंधी विषयों के वैज्ञानिक और तकनीकी पहलुओं पर न्यायाधीशों का वर्तमान अपर्याप्त ज्ञान।

(ग) विकास की गति तथा उद्योगों के प्रदूषण पर नियंत्रण रखने के बीच उचित संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता।

(घ) प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों को बन्द करने और बेरोजगारी या जीवन-यापन के स्रोतों का नष्ट होना कम करने या इनसे बचने के बीच संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता।

(ङ) 'पर्यावरण प्रभाव निर्धारण' के संबंध में निर्णयों पर प्रत्येक राज्य के स्तर पर अन्तिम अपीलीय दृष्टिकोण उपलब्ध कराए जाने की आवश्यकता।

(च) विधि की इस न्यायपीठ में ऐसा न्यायशास्त्र विकसित करने की आवश्यकता जो वैज्ञानिक प्रौद्योगिकीय विकास तथा अन्तर्राष्ट्रीय संधियों, कन्वेंशनों और निर्णयों के अनुरूप हो।

(छ) निष्पक्ष, त्वरित तथा संतोषप्रद न्यायिक प्रक्रिया के माध्यम से भारत के संविधान के अनुच्छेद 21, 47, 48क तथा 51क(छ) के उद्देश्यों को प्राप्त करना।

इस संदर्भ में विचारार्थ बहुत से प्रश्न उत्पन्न होते हैं:

(क) क्योंकि (जल जैसे) कतिपय विषयों के संबंध में विधि में प्रस्तावित परिवर्तन संविधान की अनुसूची सात की सूची दो की प्रविष्टि के अधीन आता है, क्या संसद, संविधान के अनुच्छेद 252 के अधीन राज्य विधानमंडलों द्वारा विधान या संकल्प पारित करने की आवश्यकता के बिना ही, राज्यों तथा केन्द्र दोनों स्तरों पर पर्यावरण न्यायालय गठित करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 253 के अधीन विधि अधिनियमित कर सकती है?

(ख) क्या प्रत्येक राज्य में एक पर्यावरण न्यायालय होना चाहिए?

(ग) क्या इन न्यायालयों से उच्च न्यायालयों/उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता समाप्त कर दी जानी चाहिए या पक्षकारों को पहले प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालयों से प्रभावी वैकल्पिक समाधान पाने का निदेश देना इन उच्चतर न्यायालयों के विवेकाधिकार पर छोड़ दिया जाना चाहिए? क्या सामान्य सिविल तथा दांडिक न्यायालयों की अधिकारिता पूर्ण रूप से समाप्त कर दी जानी चाहिए?



(घ) क्या राज्य पर्यावरण न्यायालयों के ऊपर अधिकारिता का उपयोग करने के लिए दिल्ली में पर्यावरण अपीलीय न्यायालय स्थापित करने की और आवश्यकता है या राज्य पर्यावरण न्यायालयों से सीधी अपील उच्चतम न्यायालय में होनी चाहिए?

(ङ) राज्य पर्यावरण न्यायालयों की अधिकारिता का स्वरूप क्या होना चाहिए, क्या यह केवल प्रशासनिक या लोक प्राधिकरणों या सरकार के आदेशों के विरुद्ध अपीलीय अधिकारिता होनी चाहिए या मूल अधिकारिता भी, ताकि उच्च न्यायालयों में जन हित याचिकाओं के भार को कम किया जा सके?

(च) न्यायालय के गठन का स्वरूप और सदस्यों की योग्यताएं कम होनी चाहिए?

(छ) इन पर्यावरण न्यायालयों की प्रक्रिया क्या होनी चाहिए?

(ज) क्या इन न्यायालयों को जनहित या वर्ग संघर्ष के मामलों की सुनवाई की भी अनुमति होनी चाहिए?

(झ) ये न्यायालय किस प्रकार की राहत प्रदान कर सकेंगे – अन्तरिम, अन्तिम, व्यादेश (स्थायी और आज्ञापक), रिसीवरों की नियुक्ति, क्षतिपूर्ति/नुकसानी आदि स्वीकृत करना आदि?

(ञ) क्या इन न्यायालयों को सिविल तथा दांडिक अधिकारिता का प्रयोग करना चाहिए?

(ट) आदेशों के निष्पादन की पद्धति क्या होनी चाहिए?

(ठ) क्या न्यायालय को, न्यायालय की अवमानना की शक्ति का प्रयोग करते हुए, उसके आदेशों का जानबूझ कर अनुपालन न करने के लिए दंड देने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए?

(ड) क्या राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995 और राष्ट्रीय पर्यावरण अपीलीय प्राधिकरण अधिनियम, 1997 का निरसन कर दिया जाना चाहिए और उनके अधीन अधिकरण की शक्तियां और अधिकारिता प्रस्तावित राज्य पर्यावरण न्यायालयों में निहित की जानी चाहिए?

इन पर तथा पर्यावरण न्यायालयों से संबंधित अन्य विभिन्न विषयों पर आगामी अध्यायों में चर्चा की जाएगी।

अध्याय – दो

## विज्ञान की अनिश्चितता और पर्यावरण न्यायालयों की समस्याएं

जबकि कतिपय विगत शताब्दियों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी में असाधारण प्रगति हुई है, फिर भी तथ्य यह है कि पर्यावरण से संबंधित कतिपय क्षेत्रों में, जहां आंकड़ों की भूमिका महत्वपूर्ण है, वैज्ञानिक संस्थानों द्वारा किए गए परीक्षणों के परिणाम अनन्तिम रहे हैं। परिणाम आंकड़ों के सही होने और प्रौद्योगिकी का प्रयोग करके किए गए परीक्षण गलत निष्कर्षों की सभी संभावनाओं को दूर करने में सक्षम रहने के अनुपात में सही हैं। हाल ही में प्रकाशित एक पुस्तक में कहा गया है:

> ''बढ़ती हुई जटिलताओं और विश्वपर्यन्त प्राकृतिक परिस्थितिकीय घटनाओं को देखते हुए, विज्ञान सर्वशक्तिमान नहीं रहा है। निश्चित रूप से कहा जाए तो, निश्चित रूप से तथ्यों को अभिव्यक्त करने वाले तकनीकी मानकों का अपनाना अब संभव नहीं रहा है। एक सिद्धान्त की तुलना में पूर्ण वैज्ञानिक निश्चितता एक अपवाद है। जैसाकि हेन्स जोन्स में कहा गया है, उत्तरदायित्व के आदर्श ने, जो अनिश्चितता के दृष्यांत स्वरूप है, निश्चितता का स्थान ले लिया है;''जबकि डैस्क्रेट्स ने यह सिफारिश की है कि ग्रहों संबंधी जोखिम को देखते हुए, जो चीज प्रश्नगत है उसे हम असत्य समझते हैं, इसके विपरीत, संदेह को संभावित निश्चितता और इस प्रकार किसी भी निर्णय में एक मूलभूत ठोस तत्व समझना वांच्छनीय होगा ........ विज्ञान, जो अब सर्वज्ञ नहीं रह गया है, एकमात्र सत्य को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करने की शक्ति नहीं रहेगा..... तथापि, जबकि वैज्ञानिक निष्ठावान हैं, वे, आगे से निर्णयकर्त्ता को यह सूचित करेंगे कि उनका ज्ञान पूर्ण नहीं है और अपने संदेह तथा मतभेद, यहां तक कि अनभिज्ञता भी व्यक्त करेंगे ...... ज्ञान और शक्ति के बीच का संबंध विलुप्त हो जाने से विशेषज्ञ द्वारा राजनेताओं को निर्णय करने, जो उन मूल्यों को दर्शाते हैं जिनकी वे रक्षा करते हैं, के लिए अविवादित ज्ञान उपलब्ध कराने का प्राचीन काल से चला आ रहा विश्वास का भ्रम टूट जाएगा।''

(एनवायरमेंटल प्रिंसिपल्स्, लेखक निकोलस डी. सडेलियन, अध्याय 3, 'प्रिकॉशनरी प्रिंसिपल', पृष्ठ 177-178, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2002)

अमेरिकी उच्चतम न्यायालय द्वारा डौबर्ट बनाम मैरिल डो फार्मास्यूटिकल्स् इन्क: (1993) 113 उच्चतम न्यायालय 2786 मामले में दिए गए एक महत्वपूर्ण निर्णय में न्यायालय ने सच्चाई जानने में विज्ञान और विधि के विभिन्न उद्देश्यों का निदेश करते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की है:

> ''..... न्यायालयों में सत्य की खोज और प्रयोगशाला में सत्य की खोज के बीच महत्वपूर्ण भिन्नताएं हैं। वैज्ञानिक निष्कर्ष निरन्तर पुनरीक्षण के अध्ययधीन रहते हैं। दूसरी ओर, विधि को विवादों का निपटान अन्तिम रूप से तथा शीघ्रता से करना होता है''।

इसी आधार पर, मि॰ ब्रायन वेन ने ''अनसरटेंटी एण्ड एनवायरमेंटल हीयरिंग' नामक अपने लेख में (खंड 2, ग्लोबल एनवायरमेंटल चेंज पृष्ठ 111) (1992) निम्नलिखित विचार व्यक्त किए हैं:

> ''अपर्याप्त आंकड़ों, अनभिज्ञता और अनिर्धार्यता के परिणामस्वरूप अनिश्चितता, विज्ञान का एक निहित अंग है''।

जब नीति निर्धारण में वैज्ञानिक ज्ञान को प्रस्थापित कर लिया जाता है या अभिकरणों या न्यायालयों द्वारा इसे निर्णय करने के आधार स्वरूप प्रयोग किया जाता है तब अनिश्चितता एक समस्या बन जाती है। जब अधिक जानकारी उपलब्ध हो जाती है तब वैज्ञानिक परिवर्तनशीलों या प्रतिमानों को परिशोधित, संशोधित या त्यक्त कर सकते हैं। तथापि, अभिकरणों और न्यायालयों को विद्यमान वैज्ञानिक ज्ञान के आधार पर अपने विचारों का चयन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, निर्णयकर्ता एजेन्सी को सामान्यतया वैज्ञानिक स्वरूप में प्रस्तुत किया जाता है जिसकी सरलतापूर्वक जांच नहीं की जा सकती। अत: अनिश्चितता या अपर्याप्त ज्ञान के कारण रिकार्ड की अपर्याप्तता पर उचित रूप से विचार नहीं किया जा सकेगा (चारमियन बारटन: दी स्टेट्स ऑफ प्रिकॉशनरी





प्रिंसिपल इन आस्ट्रेलिया: (1003 22, हारवर्ड एनवायरमेंटल लॉ रिव पैरा 509, पृष्ठ 510-511 (1998)।

वैज्ञानिक गलतियों के कारण संक्षिप्त रूप में निम्नलिखित हैं:

> 'विज्ञान की अपर्याप्तता किसी परिसंकट के प्रतिकूल प्रभावों की पहचान और तत्पश्चात उसके कारणों का पता लगाने के लिए पीछे से कार्य करने के परिणाम हैं। दूसरे, वैज्ञानिक परिक्षण, विशेषकर जहां जीवाणु विष अन्तर्ग्रस्त है, जीव जन्तुओं पर किए जाते हैं मनुष्य पर नहीं-अर्थात, जीव जन्तुओं के अध्ययन पर या अल्पाविध सैल-परीक्षण पर आधारित होते हैं। तीसरे, महामारी विषयक अध्ययन विषय के भूतकालिक अभिदर्शन पर नियंत्रण रखने या उसका सही मूल्यांकन करने में वैज्ञानिकों की अक्षमता के कारण दोषपूर्ण रह जाते हैं। इस पर भी, ये अध्ययन वैज्ञानिकों को विषय के सार के प्रभावों को अलग रखने की अनुमति नहीं देते हैं। बहुत से कारसोजिनों और जीवाणु विष की प्रच्छन्न अवधि बाद वाली व्याख्या को और अधिक समस्याजनक बना देती है। विनियम बनाए जाने से पूर्व, अभिदर्शन और निरीक्षण योग्य प्रभाव के बीच की अवधि असहनीय विलम्बकारी है'। (देखें-एलीसन सी फ्लोरने: अनसरटेंटी इन प्रोटैक्टिव एनवायरमेंटल डिसीजन मेकिंग, (खंड 15, 1991 हारवर्ड एनवायरमेंटल लॉ रिव पैरा 327, पृष्ठ 333-335)।

विचारों के उपर्युक्त सर्वेक्षण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विज्ञान का अभिमत, जो न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकेगा, न्यायाधीश को सदैव यह अनुमान लगाने के लिए विवश करता है कि वह प्रभावित पक्षकार की आशंकाओं को स्वीकार करे या प्रदूषणकर्ता द्वारा दिए गए आश्वासनों को स्वीकार करे।

विनसेंट बनाम भारत संघ: (ए आई आर 1987 सु॰ को॰ 990), नामक विगत के एक मामले में औषध परामर्शदात्री समिति की सिफारिश के अनुरूप कतिपय औषधियों का आयात करने, इनके बनाए जाने, विक्रय तथा वितरण को प्रतिबंधित करने के लिए जनहित में निदेश की मांग की गई। इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने मामले को एक स्वतंत्र वैज्ञानिक निकाय को निर्दिष्ट करने पर विचार नहीं किया अपितु उसे समिति की रिपोर्ट को स्वीकार करने के लिए विवश होना पड़ा। उन्होंने कहा:

> ''इस मामले में अन्तर्ग्रस्त जांच के आकार, जटिलता और तकनीकी स्वरूप को ध्यान में रखते हुए और कतिपय औषधियों पर पूर्ण प्रतिबंध, जिसकी मांग याचिकादाता ने की है, के दूरगामी प्रभावों के विचार से, हम सर्वप्रथम यह स्पष्ट करना चाहेंगे के ऐसे मामलों का विनिश्चय करने के लिए इस प्रकार की न्यायिक कार्यवाही उपयुक्त नहीं है।''

न्यायालय ने महसूस किया कि एक बार विशेषज्ञ ने जिस औषधि को स्वीकृत या अस्वीकृत किया है, न्यायालय उनके निर्णय के सही होने के प्रश्न पर विचार नहीं करेगा।

परन्तु बाद के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने ऐसे मामलों को विशेषज्ञों की एक स्वतंत्र समिति को भेजने का प्रयास किया। डा॰ शिवराव बनाम भारत संघ: ए आई आर 1988 एस सी 953 मामले में आयरिश मक्खन के 7500 कारटन (200 मीटरी टन) दुग्ध क्रान्ति (ऑपरेशन फ्लड) कार्यक्रम के लिए यूरोपीय आर्थिक आयोग (ई॰ई॰सी॰) के सहायता अनुदान के अन्तर्गत भारत में आयात किए गए और वृहत्तर मुम्बई को इनकी आपुर्ति की गई। आयातित मक्खन के प्रयोग को इस आधार पर चुनौती दी गई कि मक्खन आणविक प्रपात से प्रदूषित हुआ है। बम्बई उच्च न्यायालय ने परमाणु ऊर्जा विनियमनकारी बोर्ड, एक सांविधिक निकाय, की रिपोर्ट के आधार पर रिट याचिका को खारिज कर दिया। तथापि, रिपोर्ट में 'अनुज्ञेय सीमाओं' का निदेश किया गया था। सौभाग्य से, जब मामला उच्चतम न्यायालय में आया तो न्यायालय ने तथाकथित 'अनुज्ञेय सीमाओं' की सत्यता की जांच करने के लिए और निम्नलिखित प्रश्न पर अपनी रिपोर्ट देने के लिए (1) प्रो॰ एम॰जी॰के॰ मैनन, (2) डा॰ पी॰ के॰ आयंगर, और (3) जी॰ वी॰ के॰ राव सहित तीन सदस्यों की एक समिति नियुक्त करना वांच्छनीय समझा:

> 'क्या परमाणु ऊर्जा विनियमनकारी बोर्ड द्वारा 27 अगस्त, 1987 को निर्धारित अनुज्ञेय स्तर के भीतर मानव निर्मित रेडियो-न्युक्लिडस् अन्तर्विष्ट दुग्ध तथा डेयरी उत्पाद और खाद्य पदार्थ मानवीय उपयोग के लिए सुरक्षित और/या हानिरहित हैं।'

विशेष समिति ने अपनी रिपोर्ट दी जिसमें कहा गया कि परमाणु ऊर्जा विनियमनकारी बोर्ड द्वारा निर्धारित की गई 'अनुज्ञेय सीमाएं' जनसाधारण के लिए आई॰सी॰आर॰पी॰ की सीमाओं को ध्यान में रखकर निश्चित की गई थी और वास्तव में, उक्त बोर्ड ने सुरक्षा को और अधिक वरीयता दी है और यह कि निर्धारित स्तर 'सुरक्षित और

हानिरहित' थे। न्यायालय ने विशेषज्ञों की रिपोर्ट स्वीकार करते हुए रिट याचिका के खारिज किए जाने की अभिपुष्टि कर दी।

इसी प्रकार एम॰ पी॰ पोल्यूशन कन्ट्रोल बोर्ड बनाम एम॰ वी॰ नायडू: 1999 (2) एस सी सी 718 मामले में न्यायालय ने पक्षकार के दावे की विशेषज्ञों द्वारा जांच कराए जाने का आदेश दिया। यहां प्रश्न यह था कि क्या उद्योग संकटकारी था और क्या, यदि यह चालू हो गया तो उत्पादित रासायनिक संघटक किसी न किसी दिन रिसकर भूमि के निचले स्तर में पहुंच जाएंगे और भूमिगत जल में मिश्रित हो जाएंगे, जो जल बड़ी-बड़ी झीलों में जाता है और जो दो महानगरों के लिए पेय जल के मुख्य स्रोत हैं। मामला यह था कि हाईड्रोजनयुक्त कैस्टर ऑयल, 12 हाईड्रोक्सीस्टेरिक एसिड, निर्जलित कैस्टर ऑयल, मिथाइलयुक्त 12-एचएएस, डीसीओ, फैटी एसिडस् जैसे तेल व्युत्पन्नों और गिलिसरीन, अपशिष्ट विरंजित मिट्टी, कारबन और अपशिष्ट निकिल कैटेलिस्ट जैसे उप-उत्पाद ऐसे भूमिगत जल में प्रविष्ट हो जाएंगे जो बहकर झीलों में जाता है। निकिल, जो अपशिष्ट का एक भाग है, यह सामान्य ज्ञान की बात है कि यदि यह बहकर झीलों में जाता है तो जल विषैला हो जाएगा। उद्योग ने विशेषज्ञ की एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जो जल अधिनियम, 1974 की धारा 28 के अधीन उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश से गठित अपीलीय प्राधिकरण द्वारा स्वीकार कर ली गई। विद्वत न्यायाधीश ने, उद्योग द्वारा दाखिल की गई एकल वैज्ञानकि की रिपोर्ट में व्यक्त किए गए मत पर अपना निर्णय आधारित करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि यदि उद्योग चालू किया जाता है तो इससे पेय जल को कोई हानि नहीं पहुंचेगी। इस निर्णय की उच्च न्यायालय द्वारा, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन, रिट अधिकारिता में पुष्टि कर दी गई। उच्च न्यायालय ने भी उद्योग द्वारा प्रस्तुत किए गए विशेषज्ञ वैज्ञानिक के मत को ही ध्यान में रखा। उच्च न्यायालय ने यह महसूस किया कि वैज्ञानिक के मत की किसी विशेषज्ञ निकाय द्वारा जांच नहीं की गई थी और इसकी पूर्ण रूप से जांच होनी आवश्यक थी। उच्चतम न्यायालय ने राष्ट्रीय पर्यावरण अपीलीय प्राधिकरण से, जो उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश तथा अन्य विशेषज्ञों की सदस्यता से गठित किया गया था, विशेषज्ञ परामर्श की मांग की। राष्ट्रीय पर्यावरण अपीलीय प्राधिकरण को अन्य वैज्ञानिक संस्थानों से साक्ष्य लेने तथा तकनीकी सहायता प्राप्त करने की अनुज्ञा दी गई थी।

राष्ट्रीय पर्यावरण अपीलीय प्राधिकरण ने मौके पर जाकर निरीक्षण किया, विभिन्न तकनीकी पहलुओं पर विचार किया और इस विषय में एक विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें उद्योग चलाए जाने की अनुज्ञा न देने के लिए विस्तृत वैज्ञानिक आंकड़े दिए गए थे। प्राधिकरण ने केन्द्रीय भूमि जल आयोग से भी परामर्श किया। राष्ट्रीय पर्यावरण अपीलीय प्राधिकरण की रिपोर्ट उद्योग के विरूद्ध थी। जब मामला फिर से न्यायालय के सामने आया तो उद्योग ने एम॰ पी॰ पोल्यूशन कन्ट्रोल बोर्ड के पूर्वतर आदेश का आश्रय लिया कि उद्योग को, यदि कतिपय सुरक्षोपायों का अनुपालन किया जाए, चलाए जाने की अनुज्ञा दी जा सकेगी। उद्योग ने इस सीमित तर्क पर और अवसर मांगा। तब न्यायालय ने मामले को विश्वविद्यालय रासायनिक प्रौद्योगिकी विभाग, बम्बई को निर्दिष्ट कर दिया और इस विषय में राष्ट्रीय भू-भौतिकी अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद (एन जी आर आई) की भी सहायता लेने का आदेश दिया। इन संस्थानों की रिपोर्ट में वैज्ञानिक डाटा, जो उन्होंने नए सिरे से प्राप्त किया था, के विषय में विस्तृत चर्चा अन्तर्विष्ट थी। राष्ट्रीय भू-भौतिकी अनुसंधान संस्थान ने, जो भू-भौतिकी पर शीर्षस्थ वैज्ञानिक निकाय है, भूमिगत जल धारा के बहाव की जांच की और अपना निम्नलिखित निष्कर्ष दिया:

> "क्षेत्र में विभिन्न दृष्टिकोणों से की गई जांच के परिणामस्वरूप, (अर्थात क्षेत्रीय अन्वेषण, जलीय अध्ययन, भू-भौतिकीय अन्वेषण, विद्युत प्रतिरोधिता अन्वेषण, मैगनेटिक सर्वेक्षण तथा ट्रेसर अध्ययन) यह पाया गया है कि चौउरगुडी और सिरसिलमुडी के बीच स्थित खाई के थोड़े भाग के पाल जलीय मिलान की विद्यमानता है जो भू जल के प्रवाह को सुकर बनाता है..... वर्षा ऋतु के उपरांत भूमिगत जल का स्तर ऊपर आ जाएगा और उसके परिणामस्वरूप खाई के पार से जल का प्रवाह अधिक रहेगा।"

यह भी बताया गया के निकिल जैसे विषैले अपशिष्टों के भूमि के नीचे पहुंचकर पेय जल स्त्रोतों में मिश्रित हो जाने की पर्याप्त संभावना है। उच्चतम न्यायालय ने, इस आधार पर उच्च न्यायालय के निर्णय को और जल अधिनियम की धारा 28 के अधीन प्राधिकरण के आदेश को अपास्त कर दिया तथा उद्योग को और चलाने के लिए अनुज्ञा देने से इंकार कर दिया। (एम॰ पी॰ पोल्यूशन कन्ट्रोल बोर्ड बनाम एम॰ वी॰ नायडू: 2001 (2) एस सी सी 62)। यह मामला विस्तृत वैज्ञानिक अन्वेषण के लाभ का एक स्पष्ट उदाहरण है। यदि यह वैज्ञानिक अन्वेषण नहीं कराया जाता तो, दोनों नगरों में लाखों नागरिकों का जीवन खतरे में पड़ गया होता। यहां सावधानी बरताने के



सिद्धान्त का स्पष्ट रूप से प्रयोग किया गया क्योंकि एकल वैज्ञानिक की रिपोर्ट की सत्यता की जांच करने के लिए, जिसकी एकमात्र रिपोर्ट ही वहां अपीलीय प्राधिकरण और उच्च न्यायालय को उपलब्ध थी, अपीलीय प्राधिकरण तथा उच्च न्यायालय को किसी अन्य वैज्ञानिक निकायों की राय जानने का लाभ प्राप्त नहीं था, इसीलिए निर्णय उद्योग के हित में हुआ। परन्तु, क्योंकि उच्चतम न्यायालय को इन संस्थानों की रिपोर्टों का लाभ प्राप्त था, इसलिए भिन्न निष्कर्ष निकाला जाना संभव हुआ।

जैसा कि पूर्वतर बताया जा चुका है, वैज्ञानिक निष्कर्ष संबंधित वैज्ञानिक संस्थानों द्वारा अपनाए जाने वाले डाटा और प्रक्रियाओं पर आधारित होते हैं। निष्कर्ष उपलब्ध डाटा और विश्लेषण के लिए अपनाई गई प्रक्रिया और प्रौद्योगिकी की प्रभावकारिता की सीमा तक ही सही होते हैं। अधिक डाटा और बहतर प्रक्रियाओं का प्रयोग करके सदैव ही अधिक सटीक निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है।

वैज्ञानिक मामलों का स्वतंत्र विशेषज्ञों को निर्दिष्ट करने या न करने का मामला न्यायालयों के विवेकाधिकार पर छोड़ने के बजाय, हम संबंधित न्यायालय को वैज्ञानिक परामर्श उपलब्ध कराने के लिए एक सांविधिक तंत्र की व्यवस्था करने का प्रस्ताव कर रहे हैं।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के जटिल मामले जल तथा वायु प्रदूषण संबंधी न्यायालयों की कार्यवाहियों में उठते हैं। उदाहरण के लिए, हमारी नदियों, जलधाराओं और झीलों को स्वच्छ करने के मामले में तथा अपशिष्ट और जलमल, विषैले कूड़े-कचरे के निपटान, अस्पतालों के कूड़े, परमाणु कचरे, रेडियों-एक्टिव सामग्री के निपटान या पुनर्परिष्करण, डिटरजैंट्स, अपशिष्ट तलों के कुप्रभाव को दूर करने, उपांतरित अनुवांशिकी जीव से निपटने, कीटनाशी एसवेस्टोज आदि के दुष्प्रभावों को दूर करने के मामले में हमारे सामने गंभीर समस्याएं आती हैं। इस्पात, कपड़ा, चर्म जैसे विभिन्न उद्योगों से प्रदूषण की भिन्न प्रकार की समस्याएं सामने आती हैं। उद्योगों तथा यातायात से वायु प्रदूषण की समस्या आज बड़ी गम्भीर हो गई है। इसके साथ ही जलवायु परिवर्तन, ओजोन का क्षय आदि समस्याएं हैं। कार्यस्थलों तथा निवास स्थानों पर शोरशराबे की गम्भीर समस्याएं हमारे सामने हैं। पर्यावरण प्रभाव निर्धारण के लिए कोई उचित प्रणाली नहीं है। वन तथा वन्यजीवन के संरक्षण की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इस प्रकार के मामलों की संख्या का कोई अन्त नहीं है।

आज न्यायालयों के सामने विभिन्न स्तरों पर विभिन्न रूप में तकनीकी और वैज्ञानिक समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। कतिपय समस्याएं उद्योग की स्थापना के आरम्भिक चरण में ही उत्पन्न होती हैं। अन्य समस्याएं उद्योगों द्वारा दुर्गन्ध स्राव रोकने या इसे स्वच्छ करने के लिए अथवा प्रदूषण रोकने या कम करने के लिए मशीनें लगाने के समय उत्पन्न होती हैं। उद्योगों का कहना है कि ये सुरक्षोपाय पर्याप्त हैं परन्तु प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड कहती है कि ये अपर्याप्त हैं। जहां दोनों इस बात से सहमत भी हों कि सुरक्षोपाय पर्याप्त हैं वहां भी जनता को जल और वायु प्रदूषण असहनीय प्रतीत होता है। तब प्रश्न यह उठता है कि क्या चालू उद्योग को बन्द कर दिया जाए या यह अधिक बेहतर सुरक्षोपायों के साथ चालू रहने दिया जाए। इसके लिए अल्पावधि तथा दीर्घावधि उपाय करने की आवश्यकता है। अब यहां प्रश्न यह उठता है कि यदि उद्योग को बन्द कर दिया जाए तो सैकड़ों कर्मचारी बेरोजगार हो जाएंगे। इससे सरकार को भी उत्पादशुल्क और बिक्रीकर से प्राप्त होने वाली आय की हानि होगी। यदि उद्योगों को किसी अन्य स्थान पर स्थानान्तरित किया जाए तो दूसरे स्थान पर मूल्य देकर भूमि उपलब्ध करानी पड़ेगी। बहुत से मामलों में संयंत्र को ही स्थानान्तरित करना पड़ता है। इसमें बहुत बड़ी लागत आती है। यदि प्रदूषणकारी उद्योग को स्थानान्तरित नहीं किया जाता है तो वहां के नागरिकों के स्वास्थ्य और स्वस्थ रहने के लिए खतरा हो सकता है। उच्चतम न्यायालय बहुत से मामलों में इन सभी पहलुओं पर विचार करता है और कर्मचारियों के लिए क्षतिपूर्ति के संदाय के लिए और उनके पुनर्रोजगार के लिए उद्योग को अन्यत्र भूमि उपलब्ध कराने की योजना आदि बनाकर उद्योगों को शहरों से बाहर स्थानान्तरित करने के लिए निदेश देता है।

प्रदूषण तथा पर्यावरण क्षति को रोकना इस विषय का एक पहलु है। परन्तु हम, साथ ही, उद्योगों, सिंचाई तथा विद्युत परियोजनाओं के विकास की आवश्यकता को अनदेखा नहीं कर सकते। न ही हम रोजगार के अवसरों को बढ़ाने की आवश्यकता की उपेक्षा कर सकते हैं। उत्पादशुल्क और बिक्रीकर से राजस्व की वृद्धि तथा दूसरे देशों को अपने माल के निर्यात में वृद्धि करने की भी आवश्यकता है। अत: न्यायालयों को सन्तुलन बनाए रखने जैसा कार्य करने में सक्षम होना चाहिए। यह कार्य तब तक प्रभावी रूप से नहीं किया जा सकेगा जब तक न्यायालयों को न्यायिक और वैज्ञानिक आदान उपलब्ध नहीं होंगे। न्यायालय केवल संबंधित उद्योग द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर ही उद्योगों को बन्द नहीं कर सकते।

यहां हम अब एक अन्य समस्या पर ध्यान देंगे। ऐसे बहुत से लोग हैं जो उद्योगों के विरुद्ध भयादोहन के उपाय के रूप में जनहित मामले (जनहित याचिकाएं) दायर करते हैं। ऐसे उद्योगपति भी हैं जो अपने लाभ के लिए विधिक प्रक्रिया का दुरुपयोग करना चाहेंगे। कतिपय प्रदूषणकारी उद्योगपति अपने उद्योगों को बन्द करना चाहेंगे और इस प्रकार औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 में अन्तर्विष्ट प्रक्रिया से, जो उन्हें उद्योगों को बन्द करने के लिए अपनानी पड़ती, और साथ ही कर्मचारियों को मुआवजे के रूप में दिए जाने वाले वेतन से बचना चाहेंगे। कतिपय अन्य उद्योग संयंत्र को बंद करके विखंडित कर देते हैं और बहुमूल्य भूमि भवन निर्माणकर्ताओं को बेच देते हैं। कतिपय अन्य अपने उद्योगों को अन्य स्थानों पर ले जाने के लिए सरकार से राहत दिए जाने की मांग करते हैं। प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालयों को अन्तर्धाराओं में चल रही समस्याओं को भी ध्यान में रखना होगा।

यह सच है कि उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय पर्यावरण के ऐसे जटिल मामलों की सुनवाई कर रहे हैं और उन पर अपना निर्णय भी दे रहे हैं। परन्तु, यद्यपि वे न्यायिक निकाय हैं, उन्हें स्थायी रूप से अपनी सहायता और परामर्श के लिए पर्यावरण विज्ञानियों का कोई स्वतंत्र सांविधिक पैनल उपलब्ध नहीं है। उन्हें वैंसबरी सिद्धान्त जैसे सिद्धान्त अपनाने पड़ते हैं और उन्हें गुण-दोषों पर विचार करने से इंकार करना पड़ता है। वे मौके पर जाकर निरीक्षण भी नहीं करते और स्वयं वास्तविक विद्यमान तथ्यों को जानने के लिए मौखिक साक्ष्य भी नहीं लेते। वे वैज्ञानिक मामलों पर वैज्ञानिकों के पैनल से स्वतंत्र परामर्श प्राप्त कर सकते हैं।

इन पर्यावरण न्यायालयों को अनन्य अधिकारिता वाले न्यायालय बनाए जाने की आवश्यकता नहीं है। तथापि, उच्च न्यायालय, यदि वहां संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन, निजी मामले या जनहित याचिका दायर भी की जाती है, जहां पर्यावरण अधिकारियों के आदेशों को चुनौती दी जा सकती हो, हस्तक्षेप करने से इस आधार पर इंकार कर सकेंगे कि विशेष पर्यावरण न्यायालय के समक्ष इसका प्रभावी वैकल्पिक समाधान उपलब्ध हो सकता है। अभी तक, हमारे यहां जिला तथा राज्य स्तर पर उपभोक्ता न्यायालय विद्यमान हैं, उच्च न्यायालय अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका स्वीकार करने से निरन्तर इंकार कर रहे हैं क्योंकि पक्षकारों के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के अधीन स्थापित न्यायालय उपलब्ध हैं। हमारे सामने आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड तथा कतिपय अन्य देशों के विशेष पर्यावरण न्यायालयों का उदाहरण भी है और इन न्यायालयों में न्यायाधीश तथा विशेषज्ञ कमिश्नर नियुक्त हैं। ब्रिटेन के रॉयल कमीशन का विचार है कि यदि पर्यावरण न्यायालय स्थापित कर दिए जाते हैं तो उच्च न्यायालय न्यायिक पुनरीक्षण के आवेदनों को स्वीकार करने से इस आधार पर इंकार कर सकते हैं कि इन न्यायालयों के सामने प्रभावी वैकल्पिक समाधान की व्यवस्था उपलब्ध है।

उपर्युक्त कारणों से, हम प्रत्येक राज्य के लिए पृथक पर्यावरण न्यायालय स्थापित करने का प्रस्ताव कर रहे हैं। हमने अध्याय नौ में इन न्यायालयों के गठन, शक्तियों और अधिकारिता के बारे में विस्तार से चर्चा करने का प्रस्ताव किया है।

## अध्याय-तीन

## पर्यावरण संबंधी विषयों पर संवैधानिक आदेश और उच्चतम न्यायालयों के निर्णयों का सर्वेक्षण

भारत के उच्चतम न्यायालय ने पर्यावरण संबंधी मामलों के महत्व के संबंध में तरूण बनाम भारत संघ (एआईआर 1992 एस सी 514) मामले में बहुत ही महत्वपूर्ण ढंग से निम्नलिखित टिप्पणी की थी:

> "एक महान अमरीकी न्यायाधीश ने पर्यावरण के परमावश्यक विषय पर बल देते हुए कहा था कि वह सरकार को बड़े कारोबार से बड़ा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता को सरकार से बड़ा तथा पर्यावरण को सर्वोपरि मानते हैं।"

विचाराधीन विषय का महत्व बहुत अधिक है। हम सर्वप्रथम पर्यावरण से संबंधित संवैधानिक उपबंधों का निर्देश और तत्पश्चात् आज हमारे संवैधानिक न्यायालय निर्देशों द्वारा सुनाये जा रहे पर्यावरण संबंधी मामलों का केवल विस्तार दर्शाने के लिए उच्चतम न्यायालय के निर्णयों का निर्देश करेंगे।

### संवैधानिक उपबंध

भारतीय संविधान में ऐसे बहुत से उपबंध अन्तर्विष्ट हैं जो राज्य तथा नागरिकों से पर्यावरण की रक्षा करने की अपेक्षा करते हैं। यद्यपि, संविधान में, जैसा 26.1.1950 को था, पर्यावरण संरक्षण के लिए कोई विशिष्ट उपबंध नहीं था फिर भी अन्य महत्वपूर्ण उपबंध उपलब्ध थे। संविधान में, उसके मूल रूप में, निम्नलिखित उपबंध पर्यावरण से संबंधित थे:

**अनुच्छेद 21 :** **प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण:** किसी व्यक्ति को, उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।

**अनुच्छेद 42 :** **काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता का उपबंध:** राज्य काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए और प्रसूति सहायता के लिए उपबंध करेगा।

**अनुच्छेद 47 :** **पोषाहार स्तर और जीवनस्तर को ऊंचा करने तथा लोक स्वास्थ्य का सुधार करने का राज्य का कर्त्तव्य:** राज्य अपने लोगों के पोषाहार स्तर और जीवनस्तर को ऊंचा करने और लोक स्वास्थ्य का सुधार करने को अपने प्राथमिक कर्त्तव्यों में मानेगा और राज्य, विशिष्टतया, मादक पेयों और स्वास्थ्य के लिए हानिकर औषधियों के, औषधीय प्रयोजन से भिन्न, उपयोग का प्रतिषेध करने का प्रयास करेगा।

**अनुच्छेद 49 :** **राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण:** संसद द्वारा बनाई गई विधि द्वारा या उसके अधीन राष्ट्रीय महत्व वाले घोषित किए गए कलात्मक या ऐतिहासिक अभिरुचि वाले प्रत्येक स्मारक या स्थान या वस्तु का, यथास्थिति, लुंठन, विरूपण, विनाश, अपसारण, व्ययन या निर्यात से संरक्षण करना राज्य की बाध्यता होगी।

तथापि, 1972 की स्टॉकहोम घोषणा के परिणामस्वरूप संविधान में बहुत से परिवर्तन हुए। संविधान (42वां संशोधन) अधिनियम, 1976 (जो 3.1.977 से प्रभावी हुआ) के अधीन भाग चार में, जो नीति निर्देशक सिद्धान्तों से संबंधित है, अनुच्छेद 48क पुर:स्थापित किया गया। इसका पाठ निम्नलिखित है:

> "**अनुच्छेद 48क: पर्यावरण का संरक्षण तथा संवर्धन और वन तथा वन्यजीवों की रक्षा:** राज्य देश के पर्यावरण के संरक्षण तथा संवर्धन का और वन तथा वन्यजीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।"

अनुच्छेद 51क(छ) संविधान के भाग चार (क) में लाया गया जो मूल कर्त्तव्यों के बारे में है। अनुच्छेद का पाठ निम्नलिखित है:

"अनुच्छेद 51क(छ): मूल कर्त्तव्य: भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह-

(क) से (च) .....

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्यजीव हैं रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दया भाव रखे।"

उसी 42वें संशोधन के अन्तर्गत, वन तथा वन्य पशुओं और पक्षिओं का संरक्षण समवर्ती सूची की प्रविष्टि 17क और 17ख में लाया गया।

उच्चतम न्यायालय के निर्णय:

भारत के उच्चतम न्यायालय ने देश के पर्यावरण विधिशास्त्र में बहुत बड़ा योगदान किया है। उसने संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन बहुत सी सही जनहित याचिकाएं और वर्ग संघर्ष के मामले सुनवाई के लिए स्वीकार किए हैं। इसी प्रकार की कार्यवाहियां उच्च न्यायालयों ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन की हैं। इन न्यायालयों ने अपनी समग्र रिट अधिकारिता के भाग के रूप में और उनके द्वारा विकसित किए गए विस्तृत पर्यावरणीय विधिशास्त्र के संदर्भ में पर्यावरण से संबंधित विभिन्न मामलों में बहुत से निदेश जारी किए हैं। उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 21 का प्रयोग किया है और उसी अनुच्छेद में आये जीवन के अर्थ को 'स्वस्थ पर्यावरण के अधिकार' का अर्थ प्रदान करते हुए इस शब्द के अर्थ का विस्तार किया है।

अब हम भारत के उच्चतम न्यायालय के कतिपय महत्वपूर्ण निर्णयों का निदेश करेंगे।

**रतलाम नगरपालिका बनाम वरधीचन्द:** एआईआर 1980 एस सी 1622 पर्याप्त महत्व का प्रथम मामला है जिसमें न्यायालय ने खुली नालियों को बंद करने के लिए, जहां निकटवर्ती झुग्गी झौंपड़ियों में रहने वाले लोग मल-मूत्र त्याग करते थे उसे रोकने के लिए, निदेश दिए गए थे। यह मामला एक आपराधिक अपील के रूप में न्यायालय के सामने आया था। न्यायालय ने अनुच्छेद 97 का आश्रय लिया जो निदेशक सिद्धांतों के बारे में संविधान के भाग-चार में अन्तर्विष्ट है। इस अनुच्छेद में जन स्वास्थ्य के संवर्धन का निदेश है। उस निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने रतलाम नगरपालिका को जन स्वास्थ्य के अनुरक्षण के लिए बहुत से निदेश दिए। **बी॰एल॰ वढेरा बनाम भारत संघ:** ए आई आर 1996 एस सी 2969 मामले में उक्त निर्णय का अनुसरण किया गया और दिल्ली तथा नई दिल्ली नगर निगम को कूड़े कचरे की गंदगी के ढेर आदि हटाने के लिए निदेश दिए गए।

न्यायालय द्वारा अपने जांच के स्तरों का विस्तार किए जाने से बहुत पहले, उच्चतम न्यायालय ने, **सच्चिदानन्द पांडेय बनाम पश्चिम बंगाल राज्य:** ए आई आर 1987 एस सी 1109 मामले में नियम निर्धारित किए जो दुर्भाग्यवश प्रशासनिक विधि में लागू किए जाने वाले वैंसबरी नियमों जैसे प्रतीत होते हैं। उनमें कहा गया:

> "जब पारिस्थिति की कोई समस्या न्यायालय के सामने लाई जाती है, न्यायालय के संविधान के अनुच्छेद 48क..... और अनुच्छेद 51क(छ) को ध्यान में रखना पड़ता है। जब राज्य से निदेशक सिद्धांतों और मूल कर्त्तव्यों को प्रभावी बनाने का अनुरोध किया जाता है तब न्यायालय यह कहकर अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो जाता कि सिद्धान्त नीतिगत विषय है और इस विषय में कार्यवाही करना नीति निर्धारण प्राधिकरण का कार्य है। न्यायालय केवल इतनी जांच कर सकता है कि क्या उपयुक्त बातों को ध्यान में रखा गया है और निरर्थक चीजों का बहिष्कार किया गया है। उपर्युक्त मामलों में, न्यायालय और आगे जा सकता है परन्तु कितना, यह मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। न्यायालय सदैव आवश्यक निदेश दे सकेगा।"

न्यायालय द्वारा अब जांच समिति के स्वरूप का अनुसरण नहीं किया जाता है। आज न्यायालय स्वतंत्र विशेषज्ञ नियुक्त करते हैं और वे उन्हें दिए जाने वाले विशेषज्ञ परामर्श के आधार पर पक्षकारों के दावों की जांच करते हैं।

न्यायालय ने **रूरल लिटिगेशन एण्ड एनटाइटिलमेंट केन्द्र** बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: ए आई आर 1987 एस सी 359 मामले में देश की प्राचीन सभ्यता का निदेश किया। इस मामले में हिमालय पर्वत से चूना पत्थर के दोहन और पारिस्थितिकी तथा पर्यावरण पर उसके दुष्प्रभाव के बारे में विचार किया गया। उच्चतम न्यायालय ने



कहा "मानव अपने जीवन-यापन के लिए हजारों वर्षों से पारिस्थितिकी प्रणाली का सफलतापूर्वक शोषण कर रहा है परन्तु जनसंख्या वृद्धि के साथ भूमि की मांग बढ़ गई है वनों का विकास कम हो गया है और कम किया जा रहा है और मानव ने प्रकृति तथा उसकी परिसम्पदाओं पर अतिक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया है। विज्ञान की प्रगति ने मानव के लिए उन स्थलों पर पहुंचना संभव तथा सुविधाजनक बना दिया है जहां वह इससे पूर्व नहीं पहुंच सकता था। पारिस्थितिकी तथा पर्यावरण के साथ इस प्रकार के हस्तक्षेप के परिणाम अब सामने आने लगे हैं। यह आवश्यक है कि हिमालय और पर्वतीय क्षेत्रों में वन संवर्धन के साथ कोई हस्तक्षेप न किया जाए ताकि पर्याप्त वर्षा हो सके। भूमि की ऊपरी सतह को, खुदाई न करके, सुरक्षित रखा जा सकेगा ताकि क्षेत्र का प्राकृतिक स्वरूप पहले जैसा ही बना रहे..... (प्राकृतिक) संसाधनों का दोहन पूरे ध्यान और सावधानी से किया जाना चाहिए ताकि पारिस्थितिकी और पर्यावरण को गंभीर क्षति न पहुंचे (और) जल स्रोतों में कोई कमी न आए और राष्ट्रीय संपदा को सुरक्षित रखने के लिए दीर्घावधि योजना बनाई जानी चाहिए। सदैव ही यह स्मरण रखना होगा कि ये मानव जाति की स्थायी परिसम्पत्तियां हैं और इन्हें एक ही पीढ़ी में समाप्त नहीं किया जा सकता..... पर्यावरण का संरक्षण और पारिस्थितिकी का संतुलन बनाए रखना केवल सरकारों का ही कर्त्तव्य नहीं है परन्तु प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य भी है। यह एक सामाजिक दायित्व है और हमें, प्रत्येक भारतीय नागरिक को स्मरण कराना होगा कि यह संविधान के अनुच्छेद 51क (छ) मूल कर्त्तव्य के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया है।" तत्पश्चात न्यायालय ने स्टॉकहोम घोषणा 1972 का निर्देश किया।

इसके पश्चात, **रूरल लिटिगेशन एण्ड एनटाइटिलमेंट केन्द्र** बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: ए आई आर 1988 एस सी 2187 मामले में भारतीय धर्म ग्रंथों से उद्धरण दिए गए। दून घाटी के वन्य क्षेत्र में खनन को रोकने का आदेश देते हुए, उच्चतम न्यायालय ने अथर्ववेद से निम्नलिखित उद्धरण दिया (5.30.6):

> "मानव का स्वर्ग भूमि पर है। हमारा यह रहने का स्थान सभी के लिए अत्यन्त प्रिय है। इसमें प्राकृतिक औदार्य का आशीर्वाद भरा पड़ा है। यह प्रेम भावना से भरा है।"

यह बताया गया था कि हिमालय के इन वनों में हमारे संत रहते थे और तपस्या करते थे। प्राचीन काल में वृक्षों की ईश्वर के रूप में पूजा की जाती थी। इन वनों के संरक्षण के लिए ईश्वर से प्रार्थना की जाती थी। विज्ञान के विकास और जनसंख्या की वृद्धि के साथ वनों की अवनति प्रारम्भ हुई। भूमि की ऊपरी परत बह गई और असम में चेरापूंजी जैसे स्थानों में, जहां वर्ष में लगभग 500 इंच वर्षा होती थी, अकसर सूखा पड़ने लगा। वर्षा, स्वच्छ वायु और अच्छे स्वास्थ्य के लिए वनों के योगदान तथा वनों की दुभाग्यपूर्ण कटाई, जिसके कारण प्रति वर्ष लगभग 6000 मिल्टन मृदा बहा ले जाती है, का निर्देश करने के पश्चात, उच्चतम न्यायालय ने वर्ष 1976 के संविधान संशोधन का निदेश किया जब अनुच्छेद 48क और 51क (छ) अन्त:स्थापित किए गए थे और वनों को सूची दो की प्रविष्टि 19 से सूची तीन में स्थानान्तरित किया गया था। न्यायालय ने भारत सरकार द्वारा 1972 में गठित की गई राष्ट्रीय पर्यावरण, आयोजना तथा समन्वय समिति का और वन (परिरक्षण) अधिनियम, 1980 पारित किए जाने का भी निदेश किया।

**बिहार राज्य बनाम मुराद अली खां:** ए आई आर 1989 एस सी पृष्ठ 1 मामले में उच्चतम न्यायालय ने बिहार के वनों के कुन्दुरूगुटू क्षेत्र के वन्य जीवन संरक्षण के संबंध में अपील पर कार्यवाही की थी। उच्चतम न्यायालय ने सम्राट अशोक द्वारा तीसरी शताब्दी ई॰पू॰ में जारी की गई एक डिक्री से उद्धरण दिया जो वन्य जीवन और पर्यावरण के संरक्षण के मामले में विशिष्ट तत्कालीन मान्यता थी। डिक्री में कहा गया:

> "मेरे सिंहासनारूढ होने के 26 वर्ष पश्चात, मैंने घोषणा की थी कि निम्नलिखित पक्षियों/पशुओं का वध नहीं किया जाएगा: तोता, मैना, अरूणा, गुलाबी हंस, जंगली फलहंस, नन्दीमुख, सारस, चमगादड़ रानी चींटी, कछुआ, हड्डी विहीन मछलियां, गैंडा ..... और वे सभी चौपाये, जो उपयोगी या खाए जाने योग्य नहीं हैं ..... वनों को जलाया नहीं जाना चाहिए।"

उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> "प्रकृति में पारिस्थितिकीय संतुलन के बारे में पर्यावरणविदों की अवधारणा प्रकृति की इस मूलभूत अवधारणा पर आधारित है कि यह एक 'जटिल जीवधारी समुदाय है मनुष्य जिसका परस्पर आश्रित भाग है,' और यह कि अंग को समग्र का अतिक्रमण करने या उसे कम करने की अनुमति नहीं होनी चाहिए। प्रकृति में वन्य जीवन सम्पदा के कम होने का सबसे बड़ा एकमात्र कारण 'सभ्य मनुष्य' है जो प्रत्यक्षत: अत्यधिक वाणिज्यिक आखेट द्वारा या अधिक घातक रूप में अप्रत्यक्षरूप से प्राकृतिक निवास स्थलों पर अतिक्रमण कर रहा है या उन्हें विनष्ट कर रहा है।"

वर्ष 1987 में, न्यायालय ने परिसंकटमय पदार्थों के प्रयोग के कारण होने वाली क्षति के मामले में कठोर उत्तरदायित्व के सिद्धान्त निर्धारित किए थे। रेलैण्ड्स् बनाम फ्लैचर (1868) एल आर 3 एच एल 330 मामले में नियमों के अन्तर्गत भूमि के अप्राकृतिक प्रयोग और पूर्वानुमेय क्षति की उपेक्षा करने के लिए पूर्ण उत्तरदायित्व निर्धारित किया जा सकेगा। तथापि, परिसंकटमय पदार्थों के प्रयोग के मामले में न्यायालय द्वारा ऐसे अपवाद भी निश्चित किए गए जो अब विद्यमान ही नहीं है। एम० सी० मेहता बनाम भारत संघ ए आई आर 1987 एस सी 1086 (ओलियम गैस के रिसने का मामला) मामले में समुदाय के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक गैसों का उत्पादन करने वाले उद्योगों को दंडित किया गया और यहां रेलैण्डस बनाम फ्लैचर मामले का नियम अभिनिर्धारित करते हुए यह उपांतरण किया गया कि कोई उद्यम जो परिसंकटमय या स्वभाविक रूप में खतरनाक उद्योग में लगा है जो, उद्योग में कार्यरत व्यक्तियों तथा निकटवर्ती क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के स्वास्थ्य और सुरक्षा के लिए गम्भीर खतरा पैदा करता है, समुदाय को यह सुनिश्चित करना उसका पूर्ण अप्रत्यायोजनीय कर्त्तव्य होगा कि परिसंकटमय या स्वभाविक रूप में खतरनाक स्वरूप के कार्य के परिणामस्वरूप, जो वह कर रहा है, किसी को कोई हानि नहीं होगी. ..... उद्यम ऐसी हानि की क्षतिपूर्ति के लिए पूर्णतया दायी होना चाहिए और वह उद्यम यह नहीं कह सकेगा कि उसने पूर्ण सावधानी बरती है और वह हानि किसी भी प्रकार उसकी उपेक्षा के कारण हुई है..... जितना बड़ा तथा सम्पन्न उद्यम होगा, उसके द्वारा किए जा रहे परिसंकटमय या स्वभावतः खतरनाक कार्यों के कारण होने वाली दुर्घटना के लिए देय क्षतिपूर्ण की राशि भी उतनी ही बड़ी होगी।

एम० सी० मेहता बनाम भारत संघः ए आई आर 1988 एस सी 1037 मामले में चर्मशोधक उद्योगों द्वारा किया जा रहा गंगा नदी का प्रदूषण बंद किया गया। अनुच्छेद 48क और 51क(छ) का निदेश करते हुए उच्चतम न्यायालय ने कहा:

> ''....पर्यावरण को सुरक्षित रखने के महत्व और आवश्यकता के बारे में कुछ शब्द कहना आवश्यक है। संविधान के अनुच्छेद 48क में यह कहा गया है कि राज्य देश के पर्यावरण के संरक्षण तथा संवर्धन का और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा। संविधान का अनुच्छेद 51क प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करने और उसका संवर्धन करने तथा प्राणिमात्र के प्रति दया भाव रखने को प्रति दया भाव रखने को प्रत्येक नागरिक का मूल कर्त्तव्य मानता है।''

स्टॉकहोम में, 5 से 16 जून, 1972 तक चले मानव पर्यावरण संबंधी संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में स्वीकार की गई उद्घोषणाओं को निर्णय में उद्धृत किया गया। राज्य के लिए प्राकृतिक संसाधनों के दोहन को बंद करने की आवश्यकता संबंधी सिफारिशों के सारांश का उल्लेख करते हुए उच्चतम न्यायालय ने बताया कि इसके पश्चात, संसद ने पर्यावरण प्रदूषण रोकने के लिए जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम 1974 और पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 पारित किए हैं।

संविधान के अनुच्छेद 21 में निर्देशित प्राण के अधिकार में प्रदूषण मुक्त निः शुल्क जल और वायु का अधिकार भी सम्मिलित है, यह घोषणा करते हुए, उच्चतम न्यायालय ने सुभाष कुमार बनाम बिहार राज्य ए आई आर 1991 एस सी 420 मामले में कहा था कि अनुच्छेद 32 के अधीन जनहित याचिका के स्वरूप के आवेदन सत्यहित रखने वाले व्यक्तियों या व्यक्तिवर्गों द्वार पोषणीय होंगे। परन्तु यदि आवेदक का कोई व्यक्तिगत लाभ या व्यक्तिगत शत्रुता का प्रयोजन है तो ऐसे आवेदन रद्द कर दिए जाने चाहिए।

सरिसका टाईगर पार्क में चूना तथा डोलामाईट पत्थरों के खनन के लिए राजस्थान में दिए गए 400 लाइसेंसों को प्रतिबंधित करते हुए उच्चतम न्यायालय ने तरूण भरत संघ अलवर बनाम भारत संघ ए आई आर 1992 एस सी 514 मामले में कहा था कि इस प्रकार के मुकदमों को सामान्य प्रतिवादी मुकदमा नहीं समझा जाना चाहिए। याचिकादाताओं की कार्रवाई के प्रयोजन को राष्ट्रीय एजेन्डा में उच्च स्थान प्राप्त है। पर्यावरण, पारिस्थितिकी और वन जीवन के लिए याचिकादाताओं की चिन्ता में सरकार को सहयोग देना चाहिए।

यह अभिनिर्धारित करते हुए कि नगरपालिका के स्वामित्व वाली भूमि को लोक उपयोग के लिए खुले स्थान के रूप में प्रयोग करने के लिए सरकार को पट्टे पर देने का कोई अधिकार नहीं है। विरेन्द्र गैडा बनाम हरियाणा राज्य 1995(2) एस सी सी 577 मामले में उच्चतम न्यायालय ने 1972 की स्टॉकहोम घोषणा और सम्मेलन में निर्धारित सिद्धान्त-1 का और अनुच्छेद 48क, अनुच्छेद 51क (छ) और अनुच्छेद 21 का निर्देश करने के पश्चात निम्नलिखित टिप्पणी की:



> ''पर्यावरण शब्द व्यापक निहितार्थ है जिसकी परीधि में ''स्वास्थ्यकर वातावरण और पारिस्थितिकीय संतुलन'' भी आता है। अतः स्वास्थ्यकर वातावरण बनाए रखना केवल राज्य का ही नहीं अपितु प्रत्येक नागरिक का भी कर्त्तव्य है। विशेषकर राज्य का इस संबंध में यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी निरर्थक असंयत सार्वभौम शक्तियों को छोड़कर अपनी नीति में पारिस्थितिकीय संतुलन और स्वास्थ्यकर पर्यावरण बनाए रखने की नीति निर्धारित करे। अनुच्छेद 21 जीवन के अधिकार को मूल अधिकार के रूप में संरक्षण देता है। मानवीय सम्मान के साथ जीवन जीने के अधिकार सहित जीवन और उसकी उपलब्धियों के आनन्द की परिधि में पर्यावरण का संरक्षण और परिरक्षण, वायु और जल के प्रदूषण से मुक्त पारिस्थितिकीय संतुलन, स्वच्छता, जिसके अभाव में जीवन का आनन्द नहीं उठाया जा सकता, आदि भी आ जाते हैं। कोई भी विपरीत कार्य या कार्यवाही जिसके कारण पर्यावरण प्रदूषित होता है, पर्यावरणीय, पारिस्थितिकीय, वायु, जल का प्रदूषण होता है, अनुच्छेद 21 का उल्लंघन माना जाना चाहिए। अतः स्वास्थ्यकर पर्यावरण के अभाव में मानवीय सम्मान से जीवन यापन करना असंभव होगा। अतः पर्यावरणीय संरक्षण मानव के अस्तित्व के लिए अब गंभीर चिन्ता का विषय हो गया है। पर्यावरणीय संरक्षण को प्रोत्साहन देने में समस्त पर्यावरण, मानव निर्मित तथा प्राकृतिक पर्यावरण, का अनुरक्षण अन्तर्निहित है। अतः राज्य सरकार के लिए यह संवैधानिक बाध्यता है कि वह न केवल उपयुक्त पर्यावरण सुनिश्चित कराए और इसके लिए सुरक्षोपाय करे अपितु निर्मित तथा प्राकृतिक पर्यावरण दोनों को ही प्रोत्साहन देने, उनका संरक्षण और करने के लिए पर्याप्त उपाय करना भी उसका बाध्यकारी कर्त्तव्य है।''

इण्डियन काउंसिल फॉर एनविरो लीगल एक्शन बनाम भारत संघ : (1996) 3 एस सी सी 212 मामले में भी न्यायालय का निर्णय अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्णय है। यह मामला विषैले रसायन बनाने वाले कतिपय उद्योगों द्वारा मात्रभूमि को पहुंचाई जा रही गंभीर क्षति से संबंधित है। यह पाया गया कि कुओं तथा जलधाराओं का पानी काला और गंदा हो गया जो मानवीय उपयोग के लिए, यहां तक कि पशुओं के उपयोग और सिंचाई के लिए भी, अनुपयोगी हो गया। एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ : 1987 (1) एस सी सी 395 (ओलियम गैस का मामला) मामले में दिए गए इस निर्णय की कि परिसंकटमय उद्योगों द्वारा प्रदूषण या जीवन को क्षति के मामले में इनका पूर्ण उत्तरदायित्व होगा, परिपुष्टि की गई। यूनियन कारबाइड कारपोरेशन बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया : 1991 (4) एस सी सी 584 मामले में न्यायाधीशों में से एक न्यायाधीश (मुख्य न्यायाधीश श्री रंगनाथ मिश्र) का मत था कि ओलियम गैस मामले में पूर्ण उत्तरदायित्व का सिद्धान्त इतरोक्ति था और इसे गलत अभिनिर्धारित किया गया। उच्चतम न्यायालय द्वारा नियुक्त की गई विशेषज्ञ समिति ने यह निष्कर्ष निकाला कि उद्योगों से निकलने वाले अपशिष्ट कीचड़ तथा कुओं तथा जलधाराओं के प्रदूषण के बीच सीधा संबंध है। समिति द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुचने के लिए उनके विशेष ज्ञान के बारे में की गई आपत्तियों को न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया। न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 48क और 51क(छ) का तथा विधेयक के साथ संलग्न उद्देश्यों और कारणों के विवरण कर निर्देश किया, जो तत्पश्चात जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974, वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 बने और पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 तथा उसकी प्रस्तावना का, और अन्तिम रूप से परिसंकटमय अपशिष्ट (प्रबंधन और उठाई-धराई) नियम, 1989 का निर्देश किया। तत्पश्चात न्यायालय ने ''पौल्यूटर पेयज'' नामक सिद्धान्त का निर्देश किया। उन्होंने कहा कि पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा 3 और 5 केन्द्रीय सरकार को इस संबंध में उपधारात्मक उपाय करने की शक्ति प्रदान करती है। न्यायालय ने बहुत से निर्देश दिए। न्यायालय द्वारा दिए गए निदेशों की मद संख्या 6 (पृष्ट 252 देखें) में विधिक रूप से प्रशिक्षित/न्यायिक अधिकारियों की सदस्यता वाले पर्यावरण न्यायालय स्थापित करने की आवश्यकता का निदेश किया गया है।

चर्मशोधन उद्योगों से संबंधित, वैल्लौर सिटिजनस् वैल्फेयर फोरम बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया : 1996 (5) एस सी सी 647 मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा सावधानीपूर्ण सिद्धान्त, पौल्यूटर पेयज सिद्धान्त, अपनाने के लिए आधार और साबित करने का भार निर्धारित किया गया। न्यायालय ने 'अविरत विकास' की अवधारणा तथा स्टॉकहोम की 1972 की उद्घोषणा और 1992 के रिओ सम्मेलन का भी निदेश किया। अनुच्छेद 47, 48क और 51क(छ) तथा अनुच्छेद 21 का तथा वर्ष 1974 से 1986 से विभिन्न विधियों का निर्देश करने के पश्चात, न्यायालय ने निम्नलिखित विचार व्यक्त किया:

> ''पारम्परिक अवधारणा कि विकास तथा पारिस्थितिकी एक दूसरे के विरोधी हैं अब स्वीकार्य नहीं है। 'अविरत विकास' इसका उत्तर है। अन्तर्राष्ट्रीय रूप से 'अविरत विकास' के बारे में सर्वप्रथम 1972 की

की स्टॉकहोम उद्घोषणा से ज्ञात हुआ। इसके पश्चात्, 1987 में इस अवधारणा को पर्यावरण और विकास संबंधी विश्व आयोग द्वारा 'अवर कॉमन फ्यूचर' शीर्षक के अन्तर्गत उनकी रिपोर्ट से एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया गया। नार्वे के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जी.एच. ब्रांटलैण्ड आयोग के चेयरमैन थे और इस प्रकार इस रिपोर्ट को ब्रांटलैण्ड रिपोर्ट के नाम से जाना जाता है। वर्ष 1991 में, विश्व परिरक्षण यूनियन, संयुक्त राष्ट्र संघ के पर्यावरण कार्यक्रम और प्रकृति के लिए विश्वव्यापि निधि ने सामूहिक रूप से एक 'केयरिंग फॉर अर्थ' नामक एक दस्तावेज निकाला जो अविरत जीवनयापन के लिए नीति स्वरूप है। अन्त में, जून 1992 में रिओ में आयोजित भूमंडल सम्मेलन (अर्थ सम्मिट) हुआ जिसमें बड़ी संख्या में विश्व के नेताओं ने भाग लिया और इस सम्मेलन में भूमंडल को अक्षुण रखने पर विचार हुआ और इस संबंध में एक रूपरेखा तैयार की गई। रिओ सम्मेलन की महत्वपूर्ण उपलब्धियां दो कन्वेंशनों पर, जैव विविधता और दूसरी जलवायु परिवर्तन संबंधी, हस्ताक्षर किए जाना है। इन कन्वेंशनों पर 153 देशों के प्रतिनिधियों द्वारा हस्ताक्षर किए गए। प्रतिनिधियों ने तीन अबाध्यकारी, अर्थात वन विज्ञान संबंधी सिद्धान्तों का विवरण, पर्यावरण नीति और विकास पहल और एजेण्ड 21, गरीबी, जनसंख्या और प्रदूषण जैसे क्षेत्रों में आगामी शताब्दि के लिए कार्यवाही कार्यक्रम नामक, दस्तावेजों को सर्वसम्मति से स्वीकार किया।"

न्यायालय ने आगे निम्नलिखित विचार व्यक्त किया:

> "स्टॉकहोम से रिओ तक दो दशाब्दियों के दौरान समर्थनकारी परिस्थिति प्रणाली की वहनीय क्षमता में रहते हुए 'अविरत विकास' को गरीबी उन्मूलन तथा मानव जीवन स्तर का संवर्धन करने वाली एक महत्वपूर्ण अवधारणा के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। ब्रांटलैण्ड की रिपोर्ट में परिभाषित अविरत विकास का अर्थ वह विकास है जो भविष्य की पीढ़ियों को उनकी आवययकता पूरी करने में सक्षम बनाए रखने की उपेक्षा किए बिना वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करता है यह अभिनिर्धारित करने में हमें कोई हिचक नहीं है कि अविरत विकास की पारिस्थितिकी और विकास के बीच संतुलनकारी धारणा को रूढिजन्य अन्तर्राष्ट्रीय विधि के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। यद्यपि उसके मूल तत्वों को अन्तर्राष्ट्रीय विधि न्यायविदों द्वारा अभी अन्तिम रूप दिया जाना है।"

उसी मामले में, पौल्यूटर पेयज़ सिद्धान्त का निर्देश करने के पश्चात उच्चतम न्यायालय ने यह टिप्पणी की कि क्षतिग्रस्त पर्यावरण का सुधार 'अविरत विकास' कर प्रक्रिया का अंग है। तत्पश्चात् उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 21, 47, 48क तथा 51क(छ) के आधार पर सावधानीपूर्ण सिद्धान्त, पौल्यूटर पेयज़ सिद्धान्त और साबित करने के निए भार का निदेश किया। उन्होंने घोषित किया अब वे देश की पर्यावरण विधि का अंग बन गए हैं।

**एम.सी. मेहता बनाम कमलनाथ:** 1997(1) एस सी सी 388 मामले में उच्चतम न्यायालय ने 'लोक न्यास' सिद्धान्त का निदेश किया और कहा कि पारिस्थिति प्रणाली के संरक्षण के लिए इसका विस्तार नदी, वन, समुद्रतट, वायु आदि जैसे प्राकृतिक संसाधनों के लिए भी है। उन्होंने यह अभिनिर्धारित किया कि व्यास नदी के तट पर स्थित एक मोटल को पट्टे पर देने के परिणामस्वरूप मोटल द्वारा जल के प्राकृतिक बहाव में बाधा कारित हुई। राज्य सरकार ने उक्त सिद्धान्त का हनन किया। भारत सरकार द्वारा दी गई पूर्वानुमति खारिज कर दी गई, पौल्यूटर प्रेयज़ सिद्धान्त अपनाया गया और पब्लिक कम्पनी को क्षेत्र में पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी की हुई क्षति का प्रत्यास्थापन करने पर आने वाली लागत की क्षतिपूर्ति करने का निदेश दिया गया।

पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के अधीन तारीख 19.2.91 को समुद्रतटीय क्षेत्र विनियम अधिसूचना के अंतर्गत अधिसूचित तटीय क्षेत्रों में 'झींगा पालन' के प्रतिकूल प्रभाव पर **एस जगन्नाथ बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया:** ए आई आर 1997 एस सी 811 मामले में विचार किया गया। पारिस्थितिकीय दृष्टि से संवेदनशील तटीय क्षेत्रों को देखते हुए तथा झींगा की खेती के दुष्प्रभावों के विचार से नियोक्ताओं को 'झींगा की खेती' उद्योग को बंद करने का निदेश दिया गया। न्यायालय ने कर्मचारियों को 6 वर्ष का वेतन भुगतान करने का भी निदेश दिया। न्यायालय ने संविधान 48क का तथा जलीय जन्तुओं की खेती और झींगा पालन से कई राज्यों में हुई क्षति का निर्देश किया जिसके परिणामस्वरूप तटीय क्षेत्रों के कुओं और जलधाराओं का पानी खारा हो गया और जिसके कारण कृषि के लिए और पीने के लिए शुद्ध जल उपलब्ध नहीं हुआ। न्यायालय में आवेदन किया गया और उन्होंने समुद्री उत्पाद निर्यात विकास एजेन्सी और राज्य सरकार के अनुरोधों पर विचार किया। उन्होंने 'तटीय प्रदूषण नियंत्रण' विषय पर केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की रिपोर्ट तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य पदार्थ तथा कृषि संगठन



की रिपोर्ट, अल्गीरास्वामी की रिपोर्ट, वैज्ञानिकों के दल की एक अन्य रिपोर्ट, नीरी (नागपुर) की रिपोर्ट, न्यायमूर्ति सुरेश समिति की रिपोर्ट तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के मि. सौलन बरारलांग एण्ड एन्ड्रिया फिंगर स्टिटिल की रिपोर्ट पर विचार किया और तत्पश्चात् जल (संरक्षण तथा प्रदूषण नियंत्रण) अधिनियम, 1974 के उपबंधों को, पौल्यूटर पेयज़ के सिद्धान्त को और साबित करने के भार के नए उत्तरदायित्व को लागू किया और अविरत विकास की अवधारणा का निर्देश किया। अन्तिम रूप से, न्यायालय ने पर्यावरण की दृष्टि से प्रत्येक मामले की समीक्षा करने के लिए, पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धार 3(3) के अधीन उच्च शक्ति प्राप्त प्राधिकरण गठित करने और प्राधिकरण को धारा 5 के अधीन आवश्यक शक्तियां प्रदान करने का निदेश दिया। प्राधिकरण, उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश की अध्यक्षता में गठित होना चाहिए और उसके सदस्यों को जलीय जन्तुओं की खेती, प्रदूषण नियंत्रण तथा पर्यावरण संरक्षण विषयों में विशिष्ट ज्ञान उपलब्ध होना चाहिए। उपयुक्त कार्यवाही करने देने की दृष्टि से सरकार द्वारा उक्त प्राधिकरण की धारा 5 के अधीन शक्तियां दी जानी चाहिए। प्राधिकरण को 'सावधानीपूर्ण सिद्धान्त' और पौल्यूटर पेयज़ (प्रदूषणकर्ता द्वारा क्षतिपूर्ति का भुगतान) सिद्धान्त को लागू करना चाहिए। सभी जलीय जन्तुओं की खेती उद्योग बंद कर दिए जाने चाहिए।

उच्चतम न्यायालय ने, चर्चा के दौरान, संविधान के अनुच्छेद 253 और संविधान की अनुसूची सात की राज्य सूची के विषयों के बारे में विधि बनाने की संसद की विधायी शक्ति का निर्देश किया। न्यायालय ने कहा (पृष्ठ 846):

> "इस स्तर पर हम उस प्रश्न पर विचार कर सकेंगे जो प्रासंगिकरूप में हमारे सामने आया है। तटीय विनियमन अधिसूचना (भारत सरकार) के पैरा 2 के अधीन सूचीबद्ध कार्य प्रतिषिद्ध कार्य घोषित किए गए हैं। विभिन्न राज्य सरकारों ने तटीय क्षेत्रों में स्थापित उद्योगों को विनियमित करते हुए तटीय जलीय जन्तुओं की खेती विधान अधिनियमित किए हैं। हमारे सामने यह तर्क रखा गया कि तमिलनाडू राज्य सहित राज्य विधानों के कतिपय उपबंध भारत सरकार द्वारा अधिनियम की धारा 3(3) के अधीन जारी की गई तटीय विनियमन क्षेत्र अधिसूचना के अनुरूप नहीं हैं। यह या इस प्रकार की धारणा करते हुए, हमारा विचार है कि क्योंकि अधिनियम केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाया गया है इसका अध्यारोही प्रभाव है। अधिनियम (पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986) भारत के संविधान की अनुसूची सात की सूची 1 की प्रविष्टि 13 के अंतर्गत अधिनियमित किया गया है। उक्त प्रविष्टि का पाठ निम्नलिखित है:
>
> "अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, संगमों और अन्य निकायों में भाग लेना और उनमें किए गए विनिश्चयों का कार्यान्वियन करना।"
>
> अधिनियम की प्रस्तावना में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यह अधिनियम मानव-पर्यावरण विषय पर जून, 1972 में स्टॉकहोम में आयोजित हुए संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन के निर्णयों को कार्यान्वित करने के लिए अधिनियमित किया गया था। संसद ने यह अधिनियम भारत के संविधान के अनुच्छेद 253 के साथ पठित संविधान की अनुसूची सात की सूची 1 की प्रविष्टि 13 के अधीन अधिनियमित किया था। अधिनियम के अधीन जारी की गई तटीय विनियमन अधिसूचना का अध्यारोही प्रभाव होगा और यह राज्य विधानमंडलों द्वारा बनाई गई विधि पर अभिभावी होगी।'

**एम.सी. मेहता बनाम यूनियन ऑफ इंडिया :** 1997(11) एस सी सी 312 मामले में उच्चतम न्यायालय ने 'भूजल' प्रबंधन पर विचार किया। न्यायालय ने पर्यावरण तथा वन मंत्रालय, भारत सरकार को, पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा 3(3) के अधीन केन्द्रीय भूजल बोर्ड नियुक्त करने और उसे भूजल प्रबंधन के विनियमन और नियंत्रण के लिए शक्तियों के प्रयोग की अनुज्ञा देने के लिए निदेशित किया। प्राधिकरण द्वारा निदेश जारी करने के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा उसे धारा 5 के अधीन शक्तियां प्रदान की जानी चाहिए।

**डा. अशोक बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया:** 1997(5) एस सी सी 10 मामले में स्वास्थ्य के लिए हानिकारक कीटनाशकों और रसायनों के प्रयोग के विषय में विचार किया गया। उच्चतम न्यायालय ने मामले पर ध्यान देने के लिए इंटरनेट के माध्यम से जानकारी प्राप्त करके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक पाए जाने वाले कीटनाशकों और रसायनों के बारे में भविष्य में उपयुक्त उपाय करने हेतु वरिष्ठ अधिकारियों की एक समिति नियुक्त करने के लिए निदेशित किया।

**एनीमल एण्ड एनवायरमेंट लीगल डिफेन्स फंड बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया :** 1997 (3) एस सी सी 549 मामले में नेशनल पार्क, मध्य प्रदेश के जलाशयों में मछली पकड़ने के विषय पर विचार किया गया। न्यायालय ने वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम का तथा उसके अधीन जारी किए गए परमिटों का निदेश किया और कहा कि आदिवासियों के जीवन-यापन पर वन्य क्षेत्र में पारिस्थितिकी के अनुरक्षण के संदर्भ में विचार किया जाना चाहिए। यदि वन्य क्षेत्र कम होता है तो, सरकार को अनुच्छेद 48क और 51क(छ) को ध्यान में रखते हुए पर्यावरण, वनस्पति या वन्य जीवन को होने वाले किसी प्रकार के विनाश या क्षति को रोकने के लिए अधिनियम के अधीन कार्यवाही करनी चाहिए।

कलकत्ता के चर्मशोधन उद्योगों से बहकर गंगानदी में जाने वाला अशोधित, हानिकारक और विषैले गंदे पानी के विषय पर **एम॰ सी॰ मेहता** (कलकत्ता चर्मशोधन उद्योग का मामला) बनाम **यूनियन ऑफ इन्डिया :** 1997(2) एस सी सी 411 मामले में विचार किया गया। उच्चतम न्यायालय ने, जल (संरक्षण और प्रदूषण निवारण) अधिनियम, 1974, पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 और पौल्यूटर पेयज़ सिद्धान्त का निर्देश करते हुए चर्मशोधन उद्योगों को बंद करने, अन्यत्र स्थापित करने तथा कर्मचारियों के लिए क्षतिपूर्ति का निदेश किया।

**एम॰ सी॰ मेहता बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया :** 1997(11) एस सी सी 327, मामले में एक विस्तृत निर्णय देते हुए उच्चतम न्यायालय ने दिल्ली से हानिकारक विषैले, भारी और बड़े उद्योगों को हटाने, स्थानान्तरित करने, बंद करने और इसके परिणामस्वरूप उपलब्ध होने वाली भूमि के उपयोग तथा कर्मकारों को प्रतिपूर्ति के संदाय के बारे में विचार किया था।

वनों के परिरक्षण के बारे में, उच्चतम न्यायालय ने **टी एन गोडवरमन बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया :** 1997(2) एस सी सी 267; 312 आदि मामले में बहुत से आदेश पारित किए थे। यह मामला देश के सभी वनों में वृक्षों की अवैध कटाई से संबंधित था। वन (परिरक्षण) अधिनियम, 1980 के अधीन निदेश दिए गए। 1997(7) एस सी सी 440 मामले में न्यायालय ने एक उच्च शक्ति प्राप्त समिति नियुक्त की थी।

दिल्ली के निकट बडकल तथा सूरजकुंड झील (दिल्ली की सीमा के निकट हरियाणा में स्थित), जो पर्यटक स्थल है, उसके परिरक्षण का विषय **एम॰ सी॰ मेहता (बडकल तथा सूरजकुंड झीलों का मामला) बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया :** 1997(3) एस सी सी 715 मामले में सामने आया। उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 47, 48क और 51क(छ) तथा अनुच्छेद 21, 'अविरत विकास की धारणा' तथा 'पूर्वावधानीपूर्ण सिद्धान्त' का निदेश किया और झीलों के चारों ओर एक किलोमीटर के क्षेत्र में निर्माण कार्यों पर प्रतिबंध लगा दिया। उन्होंने स्पष्ट किया कि 'नीरी' और केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के विशेषज्ञों की रिपोर्टों को ध्यान में रखते हुए, झीलों के निकटवर्ती क्षेत्र में बड़े स्तर पर निर्माण कार्यों की अनुज्ञा देना वांछनीय नहीं था क्योंकि यदि इस प्रकार के निर्माण की अनुज्ञा दी गई तो उसका स्थानीय पारिस्थितिकी पर कुप्रभाव पड़ेगा। इससे भूमिगत जल का स्तर प्रभावित होगा और इससे क्षेत्र का जलीय विज्ञान गड़बड़ा जाएगा। 'नीरी' ने एक किलोमीटर की परीधि में हरित पट्टी की सिफारिश की थी। तथापि, न्यायालय ने स्पष्ट किया कि जहां योजनाएं पहले ही स्वीकृत की जा चुकी हैं उन्हें केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड तथा हरियाणा प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की आगे और स्वीकृति लेनी होगी।

**एम॰ सी॰ मेहता** (ताज ट्रीपीजिइम का मामला) बनाम **यूनियन ऑफ इन्डिया :** 1997(2) एस सी सी 353 — ए आई आर 1997 एस सी 734 मामले में ताजमहल के परिरक्षण का मामला सामने आया। न्यायालय ने, 'नीरी' की रिपोर्ट स्वीकार करने के पश्चात, निदेशित किया कि उद्योग और पर्यावरण में संतुलन बनाए रखने के विचार से ताज ट्रीपीजिइम क्षेत्र के भीतर कोक/कोयला उद्योगों को प्राकृतिक गैस का प्रयोग आरम्भ करने देना चाहिए अन्यथा उद्योगों को कार्य करना बंद करना होगा या उद्योग को इस क्षेत्र से स्थानान्तरित करना होगा। न्यायालय ने कर्मकारों को देय क्षतिपूर्ति के संबंध में भी निदेश दिए जो, निदेशों के परिणामस्वरूप रोजगार में नहीं रहेंगे। न्यायालय ने डा॰ वरदाराजन समिति की रिपोर्ट, 1995 का आश्रय लिया।

संविधान के अनुच्छेद 47 और 48 के संदर्भ में, दिल्ली शहर में वाहनों से होने वाले प्रदूषण का विषय **एम॰ सी॰ मेहता बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया :** 1998(6) और एस सी सी 589 मामलों में विचार के लिए सामने आया। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यह देखना सरकार का कर्तव्य है कि वाहनों के प्रदूषण से वायु प्रदूषित न हो। स्वच्छ वायु का अधिकार अनुच्छेद 21 से भी प्राप्त होता है जिसमें जीवन के अधिकार का निर्देश किया गया है। एम॰ सी॰ मेहता बनाम **यूनियन ऑफ इन्डिया :** 1998(8) एस सी सी 206 मामले में सीसा रहित पैट्रोल



की आपूर्ति कराने का आदेश दिया गया। **एम॰ सी॰ मेहता बनाम** यूनियन ऑफ इन्डिया : 1998(8) एस सी सी 206 मामले में 15 वर्ष से अधिक पुराने वाणिज्यिक वाहनों को चरणों में बंद करने का निदेश दिया गया। यह निर्णय दिल्ली में वायु स्वच्छ बनाए रखने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा कि 'दून घाटी' में अवैध खनन के बारे में न्यायालय द्वारा नियुक्त की गई एक समिति द्वारा मूल्यांकन किया जाना चाहिए और मामले की जांच की जानी चाहिए। (**टी॰ एन॰ गोदावर्मन थीरूमलपाड बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया :** 1998 (2) एस सी सी 341 और 1998(6) एस सी सी 190)। न्यायालय ने, **टी॰ एन॰ गोदावर्मन थीरूमलपाड बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया :** 1998 एस सी 2553 मामले में, जम्मू और कश्मीर राज्य में गिरने वाले और गिरे हुए पेड़ों को हटाना निषेध किया था।

आन्ध्र प्रदेश में पाटनचेरू, बोलाराम, ज़ोडीमेटला स्थित सामान्य अपशिष्ट शोधन संयन्त्रों (ई एफ टी पी) की खराब क्षमता के बारे में, उच्चतम न्यायालय ने **इन्डिया काउंसिल फार एनवायरन-लीगल एक्शन बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया :** 1998(9) एस सी सी 580 मामले में निदेश दिए थे कि उद्योगों को अनुज्ञेय स्तर से अधिक अपशिष्ट छोड़ने/बहाने की अनुज्ञा नहीं दी जानी चाहिए और यह कि उन्हें ऐसी प्रणाली स्थापित करनी चाहिए जो अनुज्ञेय स्तर तक ही अपशिष्ट पदार्थ छोड़ सके। प्रभावित क्षेत्रों में भू-जल औद्योगिक अपशिष्टों द्वारा अत्यधिक प्रदूषित हो गया था।

अनुज्ञेय से अधिक स्तर पर अपशिष्ट छोड़ने वाले उत्तर प्रदेश के उद्योगों के बारे में भी इसी प्रकार के निदेश दिए गए थे और **वर्ल्ड सेवियर बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया :** 1998(9) एस सी सी 247 मामले में भी निदेश जारी किए गए थे।

**अलमित्रे एच॰ पटेल बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया :** 1998(2) एस सी सी 416 मामले में नगरीय सालिड कूड़े कचरे के प्रबंधन का मामला विचारार्थ सामने आया और न्यायालय ने मामले की जांच करने के लिए एक समिति गठित की।

**रिसर्च फाऊंडेशन फॉर साईंस बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया :** 1999(1) एस सी सी 223 मामले में गोदियों/पत्तनों/आईसीडीएस में पड़े हानिकारक अपशिष्टों के प्रबंधन के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा नियुक्त समिति का विषय सामने आया। जिन प्राधिकरणों के कब्जे में यह कूड़ा कचरा होता था उन्हें आगामी आदेशों तक कूड़े का निपटान या नीलामी न करने के लिए कहा गया। यह मामला हानिकारक कचरे (प्रबंधन और उठाई-धरी) नियम, 1989 के संदर्भ में था।

चीनी उद्योग से संबद्ध शराब भट्टियों से निकलने वाले अपशिष्टों से प्रदूषण का विषय **भवानी रिवर शक्ति शुगर्स लि॰ रि॰ :** 1998(6) एस सी सी 335 मामले में विचार के लिए सामने आया।

**एम॰ सी॰ मेहता बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया:** 1998(2) एस सी सी 435 मामले में न्यायालय ने प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा असावधानीपूर्वक ढंग से दी गई मंजूरी की आलोचना की। उच्चतम न्यायालय ने राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के लिए पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम की धारा 3(3) के अधीन एक उपयुक्त प्राधिकरण गठित करने का निदेश किया। अन्य राज्यों के लिए ऐसी समितियों के संबंध में **टी॰ एन॰ गोदावर्मन थीरूमलपाड बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया :** 1999(9) एस सी सी 151 मामले में फिर से निदेश जारी किए गए।

स्वच्छ वायु का अधिकार और मोटर गाड़ियों में डीजल के प्रयोग को धीरे-धीरे कम करने की आवश्यकता का विषय **एम॰ सी॰ मेहता बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया : (डीजल के धुएं का मामला) :** 1999(6) एस सी सी 9 मामले में सामने आया। जीवन के अधिकार में अच्छे स्वास्थ्य और स्वास्थ्य की चिन्ता के अधिकार सम्मिलित होना अभिनिर्धारित किया गया। **एम॰ सी॰ मेहता बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया :** 1996(6) एस सी सी 9।

हवाई अड्डों पर धावन पथों को सप्लाई की जाने वाली हाट-मिक्स हेतु हाट-मिक्स प्लांट और इनसे निकलने वाले धुएं के बारे में **एस॰ सी॰ मेहता बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया :** 1999(7) एस सी सी 522 मामले में विचार किया गया।

मुम्बई के तटीय विनियम क्षेत्र के विषय में **पी॰ नवीन कुमार बनाम बम्बई नगर निगम :** 1999(4) एस सी सी 120 मामले में चर्चा हुई।

पर्यावरण अपीलीय प्राधिकरणों में न्यायिक और तकनीकी सहायता की कमी के विषय में ए॰ पी॰ पौल्यूशन कन्ट्रोल बोर्ड बनाम एम॰ वी॰ नायडू : 1999(2) एस सी सी 718 मामले में विस्तार से चर्चा की गई। इस मामले पर अध्याय-दो में विस्तार से विचार किया गया है। इसमें वैज्ञानिक साक्ष्य की अनिश्चितताओं, घूर्लोपायोपूर्ण सिद्धान्त, साबित करने के नए भार, प्रदूषणकर्ता को क्षतिपूर्ति करनी होगी (पौल्यूटर पेयज़ सिद्धान्त) जैसे सिद्धान्तों का निर्देश किया गया है और इस विषय के विस्तृत अध्ययन की अपेक्षा की गई है कि क्या पर्यावरण न्यायालय केवल न्यायाधीशों से गठित नहीं होना चाहिए अपितु उनमें विशेषज्ञ साक्ष्य के प्रभावी निर्धारण के लिए वैज्ञानिक/पर्यावरणविद भी होने चाहिए।

हिमाचल प्रदेश में व्यास नदी के चारों ओर पर्यावरण के संरक्षण का मामला एम॰ सी॰ मेहता बनाम कमलनाथ : 1999(1) एस सी सी 702 मामले में विचारार्थ सामने आया। जुर्माना करने या विशिष्ट क्षतिपूर्ति का आदेश देने की न्यायालय की शक्ति का विषय एम॰ सी॰ मेहता बनाम कमलनाथ : 2000(6) एस सी सी 213, मामले में सामने आया। आगरा नगर में स्वच्छ पेय जल उपलब्ध कराने का विषय डी॰ के॰ जोशी बनाम मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश राज्य : 1999(9) एस सी सी 578, मामले में विचारार्थ सामने आया।

पर्यावरण संबंधी विषयों के बारे में जागरूकता पैदा करने का मामला एम॰ सी॰ मेहता बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया : 2000(9) एस सी सी 411, मामले में विचारार्थ सामने आया।

वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 की धारा 26क(3) के अधीन राज्य विधानमंडल द्वारा चिंकारा अभ्यारण्य की अधिसूचना वापस लेने को कॉमन एज्यूकेशन एण्ड रिसर्च सोसाइटी बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया : 2000(2) एस सी सी 599, मामले में वैध ठहराया गया। यह अधिसूचना 321-56 किलोमीटर क्षेत्र में फैले नारायण सरोवर चिंकारा अभ्यारण्य में पुनर्गठित तथा नियंत्रित रूप में खनन की अनुज्ञा देने के परिणामस्वरूप वापस ली गई। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि किसी सुविधाविहीन तथा पिछड़े क्षेत्र का आर्थिक विकास भी उतना ही महत्वपूर्ण है – पर्यावरण की सुरक्षा और आर्थिक विकास के बीच संतुलन बनाए रखना होगा।

उच्चतम न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया कि प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड तथा उसके द्वारा नियुक्त व्यक्ति या विशेषज्ञ त्रुटिपूर्ण परामर्श के लिए उत्तरदायी हैं। (पौल्यूशन कंट्रोल बोर्ड बनाम महाबीर कोक इन्डस्ट्री : 2000(9) एस सी सी 344)। तीन विशेषज्ञों को, जिन्होंने उत्सर्जन स्तर के बारे में प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को परामर्श देते हुए कतिपय उद्योगों को निर्दोष स्वीकार कर लिया था, उच्चतम न्यायालय द्वारा कारण बताओं नोटिस दिया गया क्योंकि उनकी रिपोर्ट उस साक्ष्य के अनुरूप नहीं थी जिसमें भारी मात्रा में वायु प्रदूषण होना दर्शाया गया था।

पर्यावरण प्रदूषण संबंधी अपराधों के दांडिक अभियोजन के मामले में, दंड की मात्रा के बारे में उच्च न्यायालय के उदारवादी दृष्टिकोण की उच्चतम न्यायालय द्वारा यू॰ पी॰ पौल्यूशन बोर्ड बनाम मोहन मोकिन लिमिटेड : 2000(3) एस सी सी 745, मामले में गंभीर आलोचना की गई। यह विचार व्यक्त किया गया था कि वायु तथा जल प्रदूषण के मामलों में न्यायालय कोई उदारता नहीं दिखा सकेंगे। पर्यावरण के बढ़ते हुए प्रदूषण स्तर के विषय पर न्यायालयों को संसदीय चिन्ता के साथ होना चाहिए। जो जलधाराओं में हानिकारक प्रदूषक अपशिष्ट बहाते हैं वे इस विषय में जरा भी चिन्तित प्रतीत नहीं होते हैं कि वे जन स्वास्थ्य को कितनी अधिक हानि पहुंचा रहे हैं, इससे जलीय रचना को इतनी अधिक क्षति पहुंचा रही है जिसका सुधार नहीं किया जा सकेगा और पशुओं के जीवन और स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव पड़ रहा है। प्रदूषण संबंधी अपराधों के मुकदमों को सरसरी तौर पर या साधारण रूप में नहीं लिया जाना चाहिए।

प्रदूषण के संबंध में, केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की बाद वाली रिपोर्ट के सही होने के बारे में गम्भीर विवाद हुआ था क्योंकि उसमें कतिपय ऐसे प्रतिकूल निष्कर्ष दिए गए थे जो पूर्वकालिक निरीक्षण रिपोर्ट में अन्तर्विष्ट नहीं थे। न्यायालय ने, मामले के तथ्यों को देखते हुए, महसूस किया कि किसी अन्य स्वतंत्र अभिकरण द्वारा केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के अधिकारियों की उपस्थिति में, स्थान का निरीक्षण किया जाना चाहिए और उसे अपनी रिपोर्ट देनी चाहिए। (इम्तियाज अहमद बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया : 2000(9) एस सी सी 515)

हानिकारक कचरे का परिष्करण और ऐसा कचरा फैंकने वाले उद्योगों का पता लगाने का विषय रिसर्च फाऊंडेशन फॉर साईन्सेज बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया: 2000(9) एस सी सी 41, मामले में विचारार्थ सामने आया। विवरण प्रस्तुत करने के लिए संघ सरकार को निदेश दिए गए थे।



नर्मदा नदी बांध निर्माण के संबंध में देश की एक प्रमुख सिंचाई परियोजना का विषय विचार के लिए नर्मदा बचाओ आन्दोलन बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया: 2000(10) एस सी सी 664, मामले में सामने आया था। हम इस मामले में थोड़ा विस्तार से विचार करेंगे। इस मामले में, अन्तर्राजीय जल विवाद अधिनियम, 1956 के अधीन गठित अधिकरण द्वारा अन्तिम रूप से अपना निर्णय दिया गया था जो 12.12.79 को प्रकाशित हुआ था। बांध की ऊंचाई 455 फीट तक जानी थी। अधिकरण ने भूमि के जलमग्न होने, भूमि अर्जन और विस्थापित व्यक्तियों के पुर्नवास के बारे में अपना निर्णय दिया। उसमें कहा गया था कि कोई भी क्षेत्र तब तक जलमग्न नहीं किया जा सकेगा जब तक कि उस क्षेत्र से निकाले गए व्यक्तियों को पुनर्वासित नहीं कर दिया जाता। अवार्ड/निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए नर्मदा नियंत्रण प्राधिकरण (एन सी ए) गठित करने का निदेश दिया था। पर्यावरण तथा वन मंत्रालय ने आठ वर्ष पश्चात् 24.6.1987 को, निम्नलिखित शर्तों के अधीन पर्यावरण संबंधी स्वीकृति प्रदान कर दी:

1. नर्मदा नियंत्रण प्राधिकरण (एन सी ए) यह सुनिश्चित करेगा कि पर्यावरण संबंधी सुरक्षोपायों की योजना बनाई गई है और उन्हें परियोजना कार्य की प्रगति के साथ-साथ कार्यान्वित किया जाएगा।
2. प्रस्तावित समय-सारणी के अनुसार विस्तृत सर्वेक्षण/अध्ययन किया जाएगा।
3. पुर्नवास की जो योजना बनाई जानी है जलाशय के भरे जाने से पर्याप्त पहले पूरी हो जानी चाहिए।

आरम्भ में श्री बी.डी. शर्मा के एक पत्र को जनहित याचिका स्वीकार कर लिया गया और उच्चतम न्यायालय द्वारा 20.9.91 को, निष्कासितों के पुनर्वास पर निगरानी रखने के लिए एक समिति गठित करने का निदेश दिया गया था। परन्तु, अप्रैल, 1994 में–मंत्रालय द्वारा अभिस्वीकृति दिए जाने के सात वर्ष पश्चात्–नर्मदा बचाओ आन्दोलन ने बांध का निर्माण कार्य रोकने के लिए रिट याचिका दायर की और जलरोध फाटक न खोले जाने की प्रार्थना की। उच्चतम न्यायालय ने विभिन्न रिपोर्टें मांगी। निर्माण कार्य मई, 1995 में बंद कर दिया गया और यह मामला अन्ततः वर्ष 2000 में निर्णीत हुआ। (नर्मदा बचाओ आन्दोलन बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया: 2000(10) एस सी सी 664)। इस परियोजना में छोटे और बड़े 3000 बांधों का निर्माण अन्तर्ग्रस्त था। तीनों विद्वत न्यायाधीश एकमत थे कि अप्रैल, 1994 को जनहित याचिका विलंबित हो चुकी है और इसके आधार पर परियोजना को नहीं रोका जा सकेगा। दो विद्वत न्यायाधीशों ने पाया कि पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के अधीन बनाए गए नियमों के अधीन पर्यावरण प्रभाव निर्धारण अधिसूचना काफी देरी से 27.1.94 को जारी की गई थी और इसका भूतलक्षी प्रभाव नहीं था और यह मंत्रालय द्वारा 24.6.87 को दी गई अभिस्वीकृति के प्रयोजनों से भी लागू नहीं होती थी। वास्तव में, 24.6.1987 को दी गई अभिस्वीकृति में नर्मदा नियंत्रण प्राधिकरण से यह सुनिश्चित करने की अपेक्षा की गई थी कि 'पर्यावरण सुरक्षोपाय' किए जाएंगे और इसलिए परियोजना के लिए अन्य पर्यावरण प्रभाव निर्धारण कराए जाने की आवश्यकता नहीं थी। वेल्लौर सिटीजन्स वेल्फेयर फोरम बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया: 1996(5) एस सी सी 647, मामले में निर्धारित पूर्वोपाय सिद्धान्त का निर्देश करते हुए और ए.पी. पौल्यूशन कन्ट्रोल बोर्ड बनाम एम.वी. नायडू: 1999(2) एस सी सी 718, मामले से अन्तर करते हुए, उच्चतम न्यायालय ने कहा कि पूर्वोपाय सिद्धान्त और साबित करने के भार का नियम (जो यह साबित करने का भार कि इसका कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं होगा, पारिस्थितिकी के साथ हस्तक्षेप करने वाले व्यक्ति या निकाय पर डालता है) प्रदूषणकारी परियोजना या उद्योग पर लागू होगा जहां कारित होने वाली क्षति की सीमा अज्ञात है। परंतु जहां किसी उद्योग की स्थापना से पारिस्थितिकी और पर्यावरण पर पड़ने वाला प्रभाव अज्ञात है, वहां केवल यह देखना होगा कि पर्यावरण को क्या क्षति पहुंचने की संभावना है और उसे रोकने के लिए क्या सुरक्षोपाय किए गए हैं। केवल यह आधार कि पर्यावरण में परिवर्तन आएगा, ऐसी उपधारणा करने का कोई कारण नहीं है कि पारिस्थितिकीय विपत्ति आ जाएगी। एक बार परियोजना का प्रभाव ज्ञात हो जाए, तब अविरत विकास का सिद्धान्त लागू होता है जो यह सुनिश्चित करेगा कि पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखने के लिए सुरक्षोपाय किए गए हैं। अविरत विकास से अभिप्रेत है कि किस प्रकार का और किस स्तर का विकास हो सकता है जिसे शमन किए बिना प्रकृति/पारिस्थितिकी द्वारा जीवित रखा जा सकेगा। वर्तमान मामले में बांध की तुलना किसी परमाणु संस्थान या प्रदूषक उद्योग से नहीं की जा सकती। निःसंदेह, बांध के निर्माण के परिणामस्वरूप पर्यावरण में परिवर्तन आएगा परन्तु यह उपधारित करना उचित नहीं होगा कि इस प्रकार के बड़े बांध के निर्माण का परिणाम पारिस्थितिकीय विपत्ति होगा। भारत को बांधों के निर्माण कार्य को 40 वर्ष का अनुभव प्राप्त है। उन परियोजनाओं से कोई पारिस्थितिकीय विपत्ति नहीं आयी है अपितु पारिस्थितिकी में सुधार हुआ है। उपर्युक्त तर्कों के आधार पर दो विद्वत न्यायाधीशों ने (तीन में से) यह महसूस किया कि क्योंकि पंचाट में पुनर्वास के लिए प्रावधान किया गया है, इसलिए

उससे अनुच्छेद 21 का उल्लंघन नहीं होता है। न्यायालय ने निष्कासितों के लिए भूमि का आवंटन करने के निदेश जारी किए। पुनर्वास कार्य की निगरानी रखने के लिए अन्य प्राधिकरण गठित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। नर्मदा नियंत्रण प्राधिकरण स्वयं यह कार्य कर सकता है। उसके निर्णयों की पुनरीक्षा समिति द्वारा की जा सकेगी। (तथापि, तीनों में से एक न्यायाधीश का विचार था कि पर्यावरण प्रभाव निर्धारण आवश्यक था और जब तक यह निर्धारित नहीं किया जाता निर्माण कार्य बंद किया जाना चाहिए)

पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा 3(2)(v) और जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 की धारा 2(ङ), 2(ट) के बारे में ए.पी. पौल्यूशन कन्ट्रोल बोर्ड (II) बनाम प्रो॰ एम.वी. नायडू: (2001)2 एस सी सी 62, मामले में फिर से विचार किया गया। न्यायालय ने नर्मदा बचाओ आन्दोलन बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया: 2000(10) एस सी सी 664 और ए.पी. पौल्यूशन कन्ट्रोल बोर्ड (1) बनाम प्रो॰ एम.वी. नायडू: (1999)2 एस सी सी 710 मामलों पर निर्भर करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि राज्य सरकार ने झीलों के, जो दो शहरों को पेय जल उपलब्ध कराती थीं, 10 किलोमीटर की परिधि में कोई भी उद्योग स्थापित करना निषिद्ध करते हुए एक बार आदेश जारी कर दिया था तब, उसे कोई छूट नहीं देनी चाहिए थी क्योंकि इससे पूर्वोपाय के सिद्धान्त का हनन होता था। प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की अनुज्ञा के बिना, कोई उद्योग स्थापित नहीं किया जा सकेगा।

समुद्र-तट रिसोर्ट के लिए गोवा में होटल के निर्माण के बारे में विचार करते हुए, गोवा फाउंडेशन बनाम दीक्षा होल्डिंगस् प्राइवेट लिमिटेड: (2001)2 एस सी सी 97, मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि आर्थिक विकास को बनाए रखना होगा। राज्य सरकार द्वारा दी गई अनुज्ञा, पर्यावरण संरक्षण अधिनियम की धारा 3(1) और 3(2)(v) तथा नियमों के नियम 5(3)(घ) के अधीन भारत सरकार के पर्यावरण तथा वन मंत्रालय द्वारा दिनांक 19.2.1991 को जारी की गई समुद्र-तटीय विनियमन क्षेत्र अधिसूचना के उपयुक्त विचार-विमर्श पर आधारित थी और गोवा राज्य की समुद्र-तटीय क्षेत्र प्रबंधन आयोग द्वारा इसे स्वीकृति दी गई थी। होटल को आवंटित भूमि गोवा, दमन और दीव नगर और ग्राम्य आयोजना अधिनियम, 1974 के अधीन गवर्नर की अधिसूचना द्वारा बस्ती (बीच/रिसोर्ट) के लिए निर्धारित क्षेत्र में आती थी और समुद्र तटीय विनियमन क्षेत्र की श्रेणी-III में स्थित थी।

विकास और पारिस्थितिकी के परिरक्षण के बीच संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता पर लाइव ओक रिसोर्ट (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम पंचगनी एच.एस. म्यूनिसिपल काउंसिल: 2001(8) एस सी सी 329, मामले में फिर से बल दिया गया।

दिल्ली में वाहन प्रदूषण और सी एन जी का प्रयोग आरम्भ करने के आदेश को कार्यान्वित करने के संबंध में न्यायालय ने क्रमबद्ध रूप में बहुत से आदेश पारित किए। एम.सी. मेहता बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया: (2001)3 एस सी सी 763, 756 और (2002)4 एस सी सी 356।

उच्चतम न्यायालय द्वारा मुरली एस. देवड़ा बनाम यूनियन ऑफ इंडिया: (2001)8 एस सी सी 765, मामले में सार्वजनिक स्थलों पर धूम्रपान करना निषिद्ध किया गया। स्वच्छ वायु का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन प्राण के अधिकार का ही भाग है।

हिंच लाल तिवारी बनाम कमला देवी: (2001)6 एस सी सी 496, मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि स्वस्थ्य पर्यावरण में लोग अच्छे जीवन का आनन्द ले सकते हैं जो संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटी दिए गए अधिकार का सार है।

चिड़ियाघरों में वन्य जीवों की सुरक्षा और उनके स्वस्थ्य रहने के विषय पर एक मामले में विचार किया गया जहां एक चिड़ियाघर में जीवित चीते की खाल उतार ली गई थी। संविधान के अनुच्छेद 48क और वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 [धारा 38(क), 38(ग), 38(ज), 38(ञ)] के उपबंधों पर विचार किया गया था। (नवीन एम. रहेजा बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया: (2001)9 एस सी सी 762)

उच्चतम न्यायालय ने मध्य प्रदेश राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को रूचि न दिखाने तथा वास्तव में अपने कर्त्तव्य के निर्वहन में उपेक्षापूर्ण कार्य करने के लिए प्रताड़ित किया क्योंकि बहुत से उद्योग विधि के उपबंधों का उल्लंघन करते हुए प्रदूषक तत्व फैला रहे थे। स्टेट ऑफ एम.पी. बनाम केडिया लैदर लिमिटेड: (2001)9 एस सी सी 605।



बिट्टू सहगल बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया: (2001)9 एस सी सी 181 (31.10.1996 का निर्णय), मामले में महाराष्ट्र राज्य को, भारत सरकार की दिनांक 19.2.2001 की तटीय विनियमन क्षेत्र अधिसूचना तथा भारत सरकार द्वारा तारीख 6.3.1996 को स्वीकृत (शर्तों के अधीन) क्षेत्रीय विकास योजना के संबंध में दहानू तालुक की सुरक्षा के संबंध में, निदेश दिया।

न्यायालय ने, पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा 3(3) के अधीन, उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश की अध्यक्षता में एक प्राधिकरण गठित करने और क्षेत्र की सुरक्षा करने, प्रदूषण को नियंत्रित करने और उसे अधिनियम की धारा 5 के अधीन निदेश जारी करने तथा धारा 3(2)(v), 2(x) और (xii) में उल्लिखित उपाय करने के लिए शक्तियां प्रदान करने के लिए केन्द्रीय सरकार को निदेशित किया।

जो तालाब सूख गए थे उनकी सफाई कराना और विकसित करना अनुच्छेद 21 के अधीन सरकार के कर्त्तव्यों का भाग था। (हिंच लाल तिवारी बनाम कमला देवी: (2001)6 एस सी सी 496)।

दिल्ली में रिहायशी क्षेत्रों में प्रदूषण उद्योगों को बंद करने/स्थानान्तरित करने का मामला फिर से, एम.सी. मेहता बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया: (2000)9 एस सी सी 481, 483 और 534 मामलों में सामने आया।

स्मारकों और धार्मिक स्थलों के संरक्षण का विषय वसीम अहमद सईद बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया: (2002)9 एस सी सी 472, मामले में सामने आया। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि आगरा में सलीम चिश्ती की दरगाह के निकटवर्ती क्षेत्र से लाइसेंस प्राप्त 24 दुकानों को स्थानान्तरित करने से, जैसीकि पुरातत्व विभाग ने सिफारिश की थी, अनुच्छेद 21 का उल्लंघन नहीं होता है।

एम.सी. मेहता बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया: (2002)4 एस सी सी 356, मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि पर्यावरण विधि में अविरत विकास का सिद्धान्त अन्तर्निहित है। सिद्धान्त से अभिप्रेत है कि ऐसा विकास किया जा सकता है जो पारिस्थितिकी को जीवित रख सके। अविरत विकास के महत्वपूर्ण तत्व (क) पूर्वोपाय का सिद्धान्त; और (ख) प्रदूषक को क्षतिपूर्ति करनी होगी, नामक सिद्धान्त (पौल्यूटर पेयज़ प्रिंसिपल) है।

एन.डी. जयाल बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया (दिनांक 1.9.2003), मामले में उच्चतम न्यायालय ने टीहरी बांध के निर्माण कार्य से उत्पन्न मामलों पर विचार किया। इनमें एक महत्वपूर्ण मामला पर्यावरण प्रभाव निर्धारण, निष्कासितों के पुनर्वास आदि से संबंधित था।

सारांश

भारत के उच्चतम न्यायालय के उपर्युक्त निर्णयों से पर्यावरण से संबंधित मामलों के विस्तृत विषय-क्षेत्र का पता चलता है जो समय पर न्यायालय द्वारा निर्णीत हुए। न्यायालय बहुत से मामलों पर अभी भी विचार कर रहा है। यह बात नोट की जाएगी कि न्यायालय ने पर्यावरण संबंधी विषयों को निरंतर रूप से विशेषज्ञों को निर्देशित किया है, न्यायालय योजनाएं बना रहा है, निदेश जारी कर रहा है और उन पर निरन्तर निगरानी रख रहा है। इसमें उच्चतम न्यायालय के कतिपय निर्णय अनुच्छेद 32 के अधीन दायर की गई रिट याचिकाओं पर दिए गए थे जबकि कतिपय अन्य निर्णय अनुच्छेद 226 के अधीन दायर की गई रिट याचिकाओं पर उच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों के विरुद्ध की गई अपीलों पर दिए गए थे।

ऐसे मामलों से उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय पर अत्यधिक भार बढ़ गया है। पर्यावरण न्यायालय गठित करने का प्रस्ताव, जैसाकि पहले ही बताया जा चुका है, इस भार को कम करने के लिए किया गया है। उपर्युक्त निर्दिष्ट विभिन्न मामलों में, उच्चतम न्यायालय ने, देश में पर्यावरणीय विधिशास्त्र की आधारशिला रख दी है।

## अध्याय-चार

## अन्य देशों में पर्यावरण न्यायालय

हमने अध्याय-दो में पर्यावरण न्यायालय स्थापित करने की आवश्यकता का निर्देश किया था। इस अध्याय में, हम अन्य देशों में पर्यावरण न्यायालयों के गठन या गठन के प्रस्तावों का निर्देश करेंगे। आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड पर्यावरण न्यायालय स्थापित करने के मामले में अग्रणी है और इन देशों के ऐसे न्यायालय न्यायाधीशों तथा कमिश्नरों को सम्मिलित करके गठित किए गए हैं। कमिश्नर ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें पर्यावरण संबंधी विषयों का विशिष्ट ज्ञान है।

### आस्ट्रेलिया:

### न्यू साऊथ वेल्स

आस्ट्रेलिया में, न्यू साऊथ वेल्स राज्य में, लैण्ड एण्ड एनवायरमेंटल न्यायालय, 1979 के लैण्ड एण्ड एनवायरमेंट कोर्ट एक्ट के अधीन 1980 में पारित विधान द्वारा स्थापित किया गया था। (उसी समय एनवायरमेंट प्लानिंग एण्ड असेसमेंट एक्ट, 1979 भी अधिनियमित किया गया था)। यह एक वरिष्ठ अभिलेख न्यायालय है जो न्यायाधीशों और नौ तकनीकी तथा सुलहकर्ताओं से मिलकर गठित हुआ है। इसकी अधिकारिता में पर्यावरण तथा आयोजना विधि से संबंधित अपील, न्यायिक पुनरीक्षा और प्रवर्तन कार्य आते हैं। कार्यवाहियां कोई भी आरम्भ कर सकता है।

हम न्यू साऊथ वेल्स अधिनियम, 1979 के उपबंधों के बारे में विस्तार से निर्देश करेंगे। कतिपय विवरणों की तुलना में, अधिनियम की मुख्य बातें हमारे लिए महत्वपूर्ण हैं। हमने पाया है कि न्यू साऊथ वेल्स विधि के अधीन, कतिपय विषयों में, विभिन्न वर्गों मे मामलों का वर्गीकरण और अपील दायर करने के लिए विहित प्रकिया काफी जटिल है। तथापि, हम न्यू साऊथ वेल्स अधिनियम की केवल मुख्य योजना को स्वीकार करेंगे।

न्यू साऊथ वेल्स के एन.एस0 डब्ल्यू लैण्ड एण्ड एनवायरमेंट कोर्ट एक्ट, 1979 की धारा 7 के अधीन यह कहा गया है कि न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश और ऐसे अन्य न्यायाधीश होंगे जो गवर्नर, द्वारा नियुक्त किए जाएं। धारा 12 में गवर्नर, द्वारा न्यायालय के कमिश्नरों का नियुक्त किया जाना अवधारित किया गया है और उनके लिए निम्नलिखित योग्यताएं निर्धारित की गई हैं:

"(क) स्थानीय सरकार के प्रशासन या नगर आयोजना का विशेष ज्ञान और अनुभव;

(ख) नगर या ग्राम्य आयोजना या पर्यावरणीय आयोजना में उपयुक्त योग्यता और अनुभव;

(ग) पर्यावरण विज्ञान और पर्यावरण संरक्षण और पर्यावरण मूल्यांकन संबंधी मामलों का विशेष ज्ञान और अनुभव;

(घ) विधि का विशेष ज्ञान और अनुभव और भूमि मूल्यांकन में प्रेक्टिस;

(ङ) स्थापत्य कला, इंजीनियरिंग, सर्वेक्षण करने या भवन निर्माण में उपयुक्त योग्यता और अनुभव;

(च) प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन या क्राऊन की भूमियों का प्रशासन और प्रबंधन, क्लोजर सैटलमेंट एक्टस् के अधीन अर्जित की गइ भूमि और क्राऊन की अन्य भूमियों के बारे में विशेष ज्ञान और अनुभव; या

(छ) आदिवासियों के भूमि अधिकारों संबंधी विषयों का उपयुक्त ज्ञान और आदिवासियों के विवादों के निपटारे के लिए उपयुक्त योग्यताएं और अनुभव।

(ज) शहरी डिजाइन या विरासत के विषय में विशेष ज्ञान और अनुभव।"





धारा 12 में आगे कहा गया है:

"कमिश्नरों को नियुक्त करने में, मंत्री को, जहां तक व्यवहार्य हो सके, सुनिश्चित करना चाहिए कि न्यायालय उन्हीं व्यक्तियों से गठित होगा जिन्हें इस उपधारा में विनिर्दिष्ट क्षेत्रों के विषय में पर्याप्त योग्यता प्राप्त होगी।"

धारा 12 के खंड (2क) में कहा गया है कि कोई व्यक्ति पूर्णकालिक कमिश्नर या अर्धकालिक कमिश्नर नियुक्त किया जा सकेगा। धारा 12 के खंड (2क) में कहा गया है कि अर्धकालिक कमिश्नर को दुर्व्यवहार का दोषी समझा जाएगा यदि वह (स्त्री/पुरूष) अपनी नियुक्ति के दौरान न्यायालय के समक्ष किसी कार्यवाही में किसी पक्षकार की ओर से विशेषज्ञ साक्षी के रूप में या पक्षकार के प्रति विधि के रूप में उपस्थित होता है। खंड (3) में कहा गया है कि पूर्णकालिक कमिश्नरों में से एक, कमिश्नर नियुक्ति की लिखत या परवर्ती लिखत, द्वारा, वरिष्ठ कमिश्नर नियुक्त किया जा सकेगा। खंड (4) में कहा गया है कि अनुसूची-एक में कमिश्नरों की सेवा शर्तें अन्तर्विष्ट हैं।

धारा 13, 12 मास से अनधिक अवधि के लिए, जो नियुक्तिलिखत में विनिर्दिष्ट की जाएगी, कार्यकारी कमिश्नर नियुक्त करने की अनुज्ञा देती है।

धारा 14 में कमिश्नरों की अयोग्यताओं का निर्देश किया गया है। धारा 15 न्यायालय के अन्य अधिकारियों की नियुक्ति के बारे में है।

धारा 16 (भाग 3 का डिवीजन-2) न्यायालय की सामान्य अधिकारिता के बारे में है। इसका पाठ निम्नलिखित है:

"धारा 16(1): इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन या किसी अन्य अधिनियम के अधीन न्यायालय में अधिकारिता निहित होगी।

(1क) इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध या किसी अन्य अधिनियम के अधीन न्यायालय की अधिकारिता में न आने वाले, परन्तु इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध या किसी अन्य अधिनियम के अधीन न्यायालय की अधिकारिता में आने वाले किसी मामले के आनुषांगिक, किसी मामले की सुनवाई करना और उसे निपटाना भी न्यायालय की अधिकारिता में होगा।

(2) इस अधिनियम के प्रयोजनों से, न्यायालय की अधिकारिता को 7 खंडों में विभाजित किया गया है, जैसाकि इस डिविजन में उपबंधित है।"

धारा 17 से 21, 21क और 21ख अधिकारिता संबंधी इन खंडों के बारे में हैं। धारा 17, आयोजना तथा उत्पादन के बारे में विभिन्न अधिनियमों के अधीन अपीलीय अधिकारिता के बारे में है। धारा 18, स्थानीय प्रशासन, धाराओं के विभिन्न खंडों में सूचीबद्ध प्रकीर्ण अपीलों और आवेदनों के बारे में है। धारा 19 भूमि पट्टे आदि की अवधि, मूल्यांकन, दरें तथा मुआवजों से संबंधित मामलों, अर्थात विभिन्न अधिनियमों के अधीन अपील, निर्देश या कार्यवाहियों का बारे में है। धारा 20(1) पर्यावरण आयोजना और संरक्षण तथा विकास संविदा, सिविल प्रवर्तन से संबंधित विभिन्न अधिनियमों के अधीन कार्यवाहियों से संबंधित है। धारा 20(2) में कहा गया है कि धारा 71 को छोड़कर कार्यवाहियां सुनने तथा मामले निपटाने के लिए न्यायालय की वही सिविल अधिकारिता होगी जो उच्चतम न्यायालय की है:--

"(क) आयोजना या पर्यावरणीय विधि या विकास संविदा द्वारा प्रदत्त या सौंपे गए किसी अधिकार को प्रवृत्त करना;

(ख) किसी आयोजना या पर्यावरणीय विधि या विकास संविदा द्वारा प्रदत्त या सौंपे गए किसी कार्य के कार्यकरण की पुनरीक्षा करना या कार्य पर नियंत्रण रखना;

(ग) ऐसे किसी अधिकार, दायित्व या ऐसे किसी कार्य को करने के संबंध में अधिकार की घोषणा करना;

(घ) किसी विकास संविदा के भंग हो जाने के लिए क्षतिपूर्ति करने का निर्णय देना, जैसाकि सुप्रीम कोर्ट अधिनियम, 1970 की धारा 68 में उपबंधित है अथवा नहीं"

उपधारा (3)(क) में विभिन्न अधिनियमों की एक सूची दी गई है जो आयोजना या पर्यावरण विधि के अर्थों के अन्तर्गत आते हैं। उपधारा 3 (ख) और (ग) निम्नलिखित को 'आयोजना या पर्यावरणीय विधि' के अर्थों में सम्मिलित करती है:–

"(ख) पर्यावरण आयोजना और निर्धारण अधिनियम, 1979 के अर्थों के भीतर समझी गई पर्यावरण आयोजना लिखत सहित, कोई भी सांविधिक लिखत या उसके अधीन प्रभावी या उसके प्रयोजन से तैयार की गई लिखत; या

(ग) जो क्रमशः 1 सितम्बर, 1980 को या उसके पूर्व या पश्चात् किसी समय प्रवृत हो।"

उपधारा 4 में कहा गया है कि सुप्रीम कोर्ट की अधिकारिता की श्रेणी–चार में निर्दिष्ट कार्यवाहियों में उसके निर्णयों और आदेशों को लागू करने के संबंध में सुप्रीम कोर्ट एक्ट, 1980 के उपबंध और उनके अधीन बनाए गए नियम न्यायालय के किसी भी निर्णय या आदेश को लागू करने के लिए प्रभावी होंगे। उपधारा (5) में कहा गया है कि 'विकास संविदा' से कम्यूनिटी लैण्ड मैनेजमेंट एक्ट, 1989 की धारा 15, स्ट्रैटा स्कीमस् (फ्री होल्ड डवलपमेंट) एक्ट, 1973 की धारा 281 या स्ट्रैटा स्कीमस् (लीज होल्ड डवलपमेंट) एक्ट, 1986 की धारा 49 द्वारा विवक्षित करार अभिप्रेत है।

धारा 21 श्रेणी 5–संक्षिप्त प्रवर्तन–'पर्यावरण आयोजना और संरक्षण' का निर्देश करती है। इसमें कहा गया है कि विभिन्न विधियों के अधीन (क) से (जख) तक के अधीन कार्यवाहियों को सुनना और उन्हें शीघ्रता से निपटाना न्यायालय की अधिकारिता में आता है तथा खंड (एक) के निर्देशानुसार किसी अधिनियम में उपबंधित किसी अपराध के लिए अन्य कोई कार्यवाही न्यायालय पहले कर सकेगा और उसे निपटा सकेगा।

धारा 21क (श्रेणी 6) पर्यावरण अपराधों के बारे में दोषसिद्धि के विरुद्ध अपीलों के बारे में है। इसमें कहा गया है कि जस्टिसेज एक्ट, 1902 के भाग 5ख के अधीन, इस भाग की डिवीजन 3क के अधीन आने वाली अपीलों के अतिरिक्त, अपीलों का सुनना और उनका निपटारा करना न्यायालय की अधिकारिता में (इस अधिनियम में न्यायालय की अधिकारिता की श्रेणी 6 के रूप में निर्दिष्ट) है।

धारा 21ख (श्रेणी 7) पर्यावरण अपराधों के बारे में अन्य अपीलों से संबंधित है। इसमें कहा गया है कि जस्टिसेज एक्ट, 1902 के भाग 5ख के अधीन, इस भाग की डिवीजन 3क के अधीन आने वाली अपीलों के अतिरिक्त, अपीलों का सुनना और उनका निपटारा करना न्यायालय की अधिकारिता (इस अधिनियम में निर्दिष्ट न्यायालय की अधिकारिता की श्रेणी 7) में है।

धारा 22, मामले का पूर्ण और अन्तिम रूप से निर्णय करने की अधिकारिता के बारे में है ताकि कार्यवाहियों की विविधता से बचा जा सके। धारा 23, आदेश, अंतर्वर्ती सहित, पारित करने की अधिकारिता का निर्देश करती है। वे निम्नलिखित है। धारा 22 का पाठ निम्नलिखित है:

"धारा 22:न्यायालय अपने समक्ष प्रत्येक मामले में, या तो पूर्णतया या ऐसी शर्तों पर जो, वह उपयुक्त समझता है, विधिक और न्यायपूर्ण दावे के संबंध में, जो न्यायालय के समक्ष उस पक्षकार द्वारा उपयुक्त रूप से लाया गया है, वे सभी उपचार प्रदान करेगा जिसके लिए कोई भी पक्षकार अधिकारमान प्रतीत होता है ताकि जहां तक संभव हो सके, पक्षकारों के बीच सभी विवादग्रस्त विषय पूर्णतया और अन्तिम रूप से निर्धारित किए जा सकें और उन विषयों से संबंधित कार्यवाहियों की विविधता से बचा जा सके।"

धारा 23 'आदेश पारित करने' का निर्देश करती है और इसका पाठ निम्नलिखित है:

"धारा 23:न्यायालय को उन विषयों में, जो उसकी अधिकारिता में आते हैं, अंतर्वर्ती आदेश सहित, ऐसे सभी आदेश पारित करने की शक्ति प्राप्त है जो वह उपयुक्त समझता है।"

भाग 3 की डिवीजन 2 की धारा 24 और 25 में, क्षतिपूर्ति के दावे (अनिवार्य भूमि अधिग्रहण), एस्टेट, ब्याज तथा राशि के निर्धारण सहित विषय न्यायालय की अधिकारिता में लाए गए हैं।

भाग 3 की डिवीजन 2 की धारा 25ख से 25घ तक कतिपय 'विकास अनुमतियों' के लिए सशर्त वैधता आदेशों से संबंधित हैं। यह एनवायरमेंटल प्लानिंग एण्ड असेसमेंट एक्ट, 1979 के अधीन मंत्री द्वारा दी गई अनुमति की शर्तों का पालन करने के लिए कार्यवाही न करने या पालन न करने के कारण विकास अनुमतियों को अविधिमान्य बनाने की अनुज्ञा देता है।



भाग 4 की डिवीजन 2 की धारा 26 से 28 तक 'न्यायालय की डिविजनों' के बीच कार्य के विभाजन का निर्देश करती हैं। ये इस प्रकार है:

(क) एनवायरमेंटल प्लानिंग एण्ड प्राटैक्शन अपीलस् डिविजन।

(ख) लौक गवर्नमेंट एण्ड मिसलेनियस अपीलस डिवीजन।

(ग) लैण्ड टैन्योर, वैल्युऐशन, रेटिंग एण्ड कम्पेंसेशन डिवीजन।

(घ) एनवायरमेंटल प्लानिंग एण्ड प्राटैक्शन एण्ड डवलपमेंट कान्ट्रेक्ट सिविल एनफोर्समेंट डिवीजन।

(ङ) एनवायरमेंटल प्लानिंग एण्ड प्राटैक्शन समरी कान्ट्रेक्ट एनफोर्समेंट डिवीजन, और

(च) एनवायरमेंटल अपीलस् डिवीजन।

भाग 4 की डिवीजन 3 में धारा 29, ऐसे स्थानों पर बैठकें करने की अनुज्ञा देती है जो मुख्य न्यायाधीश निदेशित करे। धारा 30, मुख्य न्यायाधीश को न्यायालय के विभिन्न डिवीजनों में कार्य का विभाजन करने की शक्ति प्रदान करती है। धारा 31 में एक डिवीजन से दूसरे डिवीजन में स्थानान्तरण का उपबंध है।

विशेष महत्व की बात यह है कि धारा 33 में कहा गया है कि श्रेणी 1, 2, 3 की अधिकारिता का न्यायाधीश द्वारा या एक या अधिक कमिश्नरों द्वारा प्रयोग किया जा सकता है। [अर्थात पर्यावरण आयोजना तथा संरक्षण संबंधी अपील (श्रेणी–II) और भूमि पट्ट्य अवधि, मूल्यांकन, दर निर्धारण और क्षतिपूर्ति संबंधी मामले (श्रेणी–III)]

परन्तु धारा 33 के अनुसार 4, 5, 6 श्रेणियों के अधीन केवल न्यायाधीश ही अधिकारिता का प्रयोग कर सकता है [अर्थात एनवायरमेंटल प्लानिंग एण्ड प्राटैक्शन एण्ड डवलपमेंट कान्ट्रेक्ट सिविल एनफोर्समेंट डिवीजन (श्रेणी 4); एनवायरमेंटल प्लानिंग एण्ड प्राटैक्शन समरी कान्ट्रेक्ट एनफोर्समेंट (श्रेणी 5); अपीलस् फ्रोम कन्विक्शनस् रिलेटिंग टू एनवायरमेंटल ऑफैंसिज (श्रेणी–VI)]

धारा 33 में निर्दिष्ट, एक विशेष परिस्थिति यह है कि धारा 16(1क) (अर्थात सहायक विषय) के अधीन अधिकारिता का प्रयोग न्यायाधीश द्वारा किया जाएगा परन्तु धारा 37 के अनुसार उसकी सहायता एक या अधिक कमिश्नरों द्वारा की जा सकेगी। धारा 37 के अधीन, श्रेणी 1, 2, 3 के अधीन भी न्यायाधीश द्वारा, एक या अधिक कमिश्नरों की सहायता के साथ अधिकारिता का प्रयोग किया जा सकेगा।

धारा 34क, एनवायरमेंट प्लानिंग एण्ड असेसमेंट एक्ट, 1979 से संबंधित श्रेणी–I की कार्यवाहियों का निर्देश करती है। धारा 34 ख में मौके पर सुनवाई का निर्देश है। धारा 34ग मामलों की न्यायालय द्वारा सुनवाई से संबंधित प्रबंधों का निर्देश करती है, धारा 35 खंड 3 में कमिशन द्वारा जांच का निर्देश है। धारा 36 एनवायरमेंट प्लानिंग एण्ड असेसमेंट एक्ट, 1979 की धारा 97 के अधीन आने वाले मामलों के बारे में न्यायालय द्वारा कमिशन के लिए प्रतिनिधिमंडल भेजने का निर्देश करती है। सरकार, धारा 36(1क) के अधीन विनियमों द्वारा अनुसूची 2 में विनिर्दिष्ट मदों में अन्य मदें जोड़ सकती है, इनमें परिवर्तन कर सकती है तथा उनका लोप कर सकती है या नई अनुसूची जोड़ सकती है।

धारा 37 में ऐसे स्थानों, जहां कमिश्नरों के साथ न्यायाधीश बैठेगा और तत्संबंधी प्रक्रिया का निर्देश है।

धारा 38 में कहा गया है कि श्रेणी 1, 2, 3 की कार्यवाहियों में, जहां तक संभव हो सके, कम से कम औपचारिकता तथा तकनीकी अपनाई जाएंगी और इन्हें शीघ्रता के साथ पूरा किया जाएगा। न्यायालय साक्ष्य के नियमों का पालन करने के लिए बाध्य नहीं है। न्यायालय मामले से संबंधित व्यवसायिक अथवा अन्य योग्यताएं रखने वाले किसी भी व्यक्ति की सहायता ले सकेगा। धारा 39 अपील संबंधी न्यायालय की शक्तियों का निर्देश करती है–जहां वह अतिरिक्त साक्ष्य ले सकेगा। अन्य उपधाराओं में अन्य विभिन्न विवरणों का निर्देश किया गया है। धारा 39क अपीलों में पक्षकारों के संयोजन का निर्देश करती है। धारा 40 में न्यायालय की अतिरिक्त शक्तियों–सुखाचारों के संरक्षण का निर्देश है। धारा 48 में वह प्रक्रिया अन्तर्विष्ट है जहां प्रतिवादी उपस्थित नहीं होता है, धारा 49 में यह बताया गया है कि यदि कोई भी पक्षकार उपस्थित नहीं होता है तब क्या होगा और धारा 50 यह निर्देश करती है कि यदि दोनों पक्षकार उपस्थित हों तब क्या होना चाहिए। धारा 51 वादों का समेकन करने की शक्ति प्रदान करती है, धारा 52 खर्चे के संदाय का और धारा 53 शास्ति या आदेशों को लागू करने की शक्ति का निर्देश करती है, धारा 55, अपराधों में सहायता करने, अपराध करने के लिए प्रेरित करने, सलाह देने या उपाप्त करने का निर्देश करती है।

न्यायालय के आदेशों की अन्तिमता का भाग 5 में धारा 56 आदि में निर्देश किया गया है। भाग 5 के डिवीजन 2 में जो कुछ कहा गया है उसे या दांडिक अपीलों से संबंधित मामलों को छोड़कर, धारा 56 के अधीन आदेश अन्तिम होंगे।

भाग 5 के डिवीजन 2 (धारा 56क), श्रेणी 1, 2 और 3 के मामलों में कमिश्नरों के विरुद्ध न्यायालय में अपील करने की अनुज्ञा देती है। श्रेणी 1, 2 और 3 के अन्य मामलों में अपील उच्चतम न्यायालय में की जा सकेंगी। धारा 58, निलंबन आदि सहित, अपीलीय न्यायालय की शक्तियों का निर्देश करती है। भाग 5क, न्यायालय द्वारा मध्यस्थता और पक्षपातरहित मूल्यांक किए जाने का निदेश करती है। निर्देशन केवल पक्षकारों की सहमति से किया जा सकेगा। गोपनीयता आदि के बारे में अन्य विवरण निर्देशित किए गए हैं।

डिवीजन 2 का भाग 6 प्रकीर्ण मामलों से संबंधित है, उदाहरणार्थ कार्यवाहियां खुले न्यायालय में होंगी, प्रक्रिया संबंधी विषय, खर्चे का आदेश जो न्यायालय द्वारा दिया जाएगा, न्यायालय की सहमति के अतिरिक्त मामलों का छोड़कर, कमिश्नरों द्वारा नहीं, जमा राशियों पर देय ब्याज, कष्टकारी मुकदमेबाज और उच्चतम न्यायालय से स्थानान्तरण, नियम तथा विनियम आदि विषय।

उपर्युक्त उपबंध पर्यावरण न्यायालयों से संबंधित न्यू साऊथ वेल्स अधिनियम, 1979 के प्रमुख उपबंध हैं। जहां कतिपय प्रमुख उपबंध हमें अच्छे प्रतीत होते हैं वहां हमने देखा है कि विभिन्न श्रेणियों में वादों और कार्यवाहियों का वर्गीकरण बहुत जटिल है। हमारे विचार में, जहां तक भारतीय पर्यावरण न्यायालयों का संबंध है, सरल पद्धति आवश्यक है।

**न्यूजीलैण्ड**

न्यूजीलैण्ड पर्यावरण न्यायालय की स्थापना 1991 के अधिनियम का संशोधन करके रिसोर्स मैनेजमेंट (अमेंडमेंट) एक्ट, 1996 के अधीन की गई थी और इस न्यायालय ने भूतपूर्व आयोजना अधिकरण का स्थान ले लिया। रिसोर्स मैनेजमेंट एक्ट, 1991 के प्रवर्तन से पूर्व न्यूजीलैण्ड का टाऊन एण्ड कन्ट्री एक्ट, 1977 लागू होता था जो ब्रिटिश मॉडल पर आधारित था। (पक्षियों के संरक्षण के लिए रॉयल सोसाइटी (यू॰के॰) (2000) (पैरा 1.1.9क) द्वारा प्रकाशित अनुपूरक ज्ञापन से मार्क साऊथ गेट द्वारा दिया गया विस्तृत विवरण उपलब्ध है और न्यूजीलैण्ड अधिनियम के निश्चित और सही मूल्यांकन की दृष्टि से इसे यहां (छोटे-मोटे परिवर्तनों के साथ) स्वीकार किया गया है।

1996 के संशोधन अधिनियम के अधीन न्यूजीलैण्ड में पर्यावरण न्यायालय एक स्वतंत्र विशेषज्ञ न्यायालय है जो पर्यावरण न्यायाधीशों और पर्यावरण कमिश्नरों (तकनीकी विशेषज्ञ) से गठित है (जो जिलाधीश स्तर पर है)। प्रत्येक बार वे न्याय मंत्री की सिफारिश पर गवर्नर जनरल द्वारा पांच वर्ष की अवधि के लिए नियुक्त किए जाते हैं। न्यायाधीशों और कमिश्नरों को नियुक्त करने में, गवर्नर जनरल को, वाणिज्यिक और आर्थिक कार्य; स्थानीय प्रशासन; सामुदायिक कार्य; आयोजना तथा संसाधन प्रबंधन; विरासत संरक्षण; पर्यावरणीय विज्ञान; वास्तुकला; इंजीनियरिंग; खनिज और वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रियाओं आदि सहित–ज्ञान और अनुभव सुनिश्चित कराने की आवश्यकता का ध्यान रखना पड़ता है।

पर्यावरण न्यायालय, मध्यस्थता और माध्यस्थम को प्रोत्साहन देता है और अधिकांश मामले सामान्यता केवल पर्यावरण कमिश्नर की अध्यक्षता में इस प्रकार के करार द्वारा ही निपटा दिए जाते हैं। तथापि, ऐसे सभी करारों को प्रभावी नहीं बनाया जाता है जब तक कि वे न्यायालय द्वारा नहीं देख लिए जाते जो करारों में परिवर्तन भी कर सकता है। जहां न्यायालय में प्रतिकूल प्रक्रियाएं सामने आती हैं, उनका प्राथमिक उद्देश्य उच्च स्तरीय जानकारी प्राप्त करना है जिससे न्यायालय किसी निर्णय पर पहुंच सके।

न्यूजीलैण्ड के पर्यावरण न्यायालय में सामान्यतया एक पर्यावरण न्यायाधीश और दो कमिश्नर होते हैं–प्रवर्तन कार्यवाहियों के सिवाय जो विधि के विषय हैं और उनकी सुनवाई केवल न्यायाधीश द्वारा ही की जाती है। 1979 के न्यू साऊथ वेल्स अधिनियम में भी प्रवर्तन सदैव न्यायाधीश द्वारा या उसकी सहमति से किया जाता है।

न्यूजीलैण्ड पर्यावरण न्यायालय साक्ष्य के नियमों से बाध्य नहीं है और यह अपने प्रक्रिया नियम बनाने के लिए स्वतंत्र है परिणामस्वरूप, यहां की कार्यवाहियां अन्य न्यायालयों की तुलना में कम औपचारिक हैं। अधिवक्ता



व्यक्तिगत रूप से भी उपस्थित हो सकता है और न्यायालय व्यक्तियों और व्यक्ति वर्गों को अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए प्रोत्साहन देता है।

संसाधन-स्वीकृति निर्णयों के विरुद्ध पर्यावरण न्यायालय में अपील करने का अधिकार ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को है जो स्वीकृति के बारे में कोई निवेदन करना चाहता है अर्थात् तीसरे पक्ष को, और आवेदकों को भी। तीसरे पक्षकार भी किसी के विरुद्ध आर॰एम॰ए॰ (रिसोर्स मैनेजमेंट एक्ट) लागू करने के लिए आदेश देने हेतु न्यायालय में आवेदन कर सकेंगे। केवल विधि के प्रश्नों के बारे में पर्यावरण न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकेगी।

न्यूजीलैण्ड पर्यावरण न्यायालय क्षेत्रीय तथा जिला विवरणों और योजनाओं (विकास योजना समतुल्य) के बारे में किए गए निर्देशों की और संसाधन स्वीकृतियों (आयोजना आवेदन समतुल्य) के विरुद्ध की गई अपीलों की भी सुनवाई करता है, यह घोषणाएं कर सकता है, अर्थात् विधि की व्याख्या कर सकता है, और यह सिविल तथा दांडिक कार्यवाहियों के माध्यम से आर॰एम॰ए॰ (रिसोर्स मैनेजमेंट एक्ट) को लागू कर सकता है। न्यायालय के निर्णयों को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक संशोधन करना स्थानीय प्राधिकारियों का दायित्व है। स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा दी गई स्वीकृतियों पर न्यायालय द्वारा नए साक्ष्य लेने के पश्चात्, नए सिरे से निर्णय लिए जा सकते हैं। न्यायालय के कर्त्तव्यों में पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभावों को बचाना, उनके विरुद्ध उपचार करना या इन्हें कम करना सम्मिलित हैं और रिसोर्स मैनेजमेंट एक्ट के अनुसार अविरत प्रबंधन को प्रोत्साहन देना न्यायालय का सामान्य कर्त्तव्य है।

न्यूजीलैण्ड पर्यावरण न्यायालय द्वारा नीति निर्णय भी प्रतिदिन ही किए जाते हैं जैसाकि 'एडज्यूकेटिंग सस्टेनेबिलिटी (1998) न्यूजीलैण्ड एनवायरमेंट्स कोर्ट एण्ड रिसोर्स मैनेजमेंट एक्ट' विषय पर मि॰बी॰ बर्डसांग ने अपनी ऑक्सफोर्ड फैलोशिप रिपोर्ट (1998) ऑकलैण्ड में कहा है।

सकारात्मक रूप में, न्यूजीलैण्ड न्यायालय पर्यावरण विशिष्ट ज्ञान, विधिक तथा तकनीकी दोनों स्तरों पर, और लोकहित में पर्यावरण संबंधी विषयों पर निर्णय देने का एक रिकार्ड उपलब्ध कराता है। जब मामलों की नए सिरे से सुनवाई की जाए तब, जैसाकि अधिनियम में कहा गया है, अविरत प्रबंधन को प्रोत्साहन देना भी न्यायालय का कर्त्तव्य है। पर्यावरण संबंधी विशेषज्ञ ज्ञान, निरीक्षक कार्यालय में, कतिपय आयोजना संबंधी मामलों में भी, पर्यावरण संबंधी और अधिक विशेषज्ञ ज्ञान की आवश्यकता होने की ओर संकेत करेगा।

एक अन्य लाभ यह है कि न्यायालय प्रवर्तन संबंधी मामलों की सुनवाई भी करता है और पर्यावरण संबंधी विधान के उल्लंघन को गम्भीरता से लेता है। न्यायालय जुर्माना कर सकता है और पर्याप्त जुर्माना करता है। न्यायालय तीसरे पक्षकारों द्वारा निदेशित किए गए मामलों को भी सुन सकता है। जैसाकि ब्रिटेन में है, प्रवर्तन स्थानीय प्राधिकारियों के विवेकाधिकार में नहीं है। वास्तव में ब्रिटेन में मजिस्ट्रेट न्यायालय तथा अन्य न्यायालयों की आलोचना इसलिए की जाती है कि कभी-कभी वे आयोजना नियंत्रण या पर्यावरण विधान के उल्लंघनों के लिए उपयुक्त दंड नहीं देते हैं। पर्यावरण अपराधों की गम्भीरता को न्यूजीलैण्ड के पर्यावरण न्यायालयों द्वारा बहतर रूप से समझा जाता है।

न्यूजीलैण्ड का अधिनियम, मामले की सुनवाई आरम्भ करने से पूर्व मामले के समाधान की सुविधा के लिए, वैकल्पिक विवाद समाधान को प्रोत्साहन देता है–उदाहरण के लिए मध्यस्थता, सुलह या अन्य प्रक्रियाएं। ये उपबंध बहुत सफल सिद्ध हुए हैं।

तथापि, असफल पक्षकारों के विरुद्ध खर्चे अधिरोपित करने की न्यायालय की शक्ति की कुछ आलोचना हुई है परन्तु जहां योजना नीति विवरण या लोकहित अन्तर्ग्रस्त हों उन मामलों के सिवाय खर्चे अधिरोपित करना मुकदमें में एक आम बात है। तथापि, आलोचकों का कहना है कि खर्चे इतने अधिक, 8,500 से 20,000 डालर तक क्यों होने चाहिए, और यह कि इस कारण से खर्चों के बारे में विकासकर्ताओं के विरोधों से सही आपत्तियां हतोत्साहित होगी। साक्ष्य के विस्तृत क्षेत्र के बारे में आलोचना सही नहीं है क्योंकि न्यायपीठ में विशेषज्ञों की उपस्थिति सदैव अनावश्यक साक्ष्य को छोड़ सकेगी।

1991 के न्यूजीलैण्ड अधिनियम में 1999 में किए गए संशोधनों का सारांश निम्नलिखित है: (एंजिलो रीगो देखें)। विधेयक का उद्देश्य विधि के विभिन्न घटकों को संबोधित करना था। सर्वप्रथम, संशोधनों का आशय उद्देश्यों को हानि पहुंचाए बिना प्रक्रिया में विलम्ब और खर्चों को कम करना था। दूसरे, विरासत तथा पुरातत्व विज्ञान से संबंधित बहुत से उपबंध हैं जो ऐतिहासिक विरासत के संरक्षण को राष्ट्रीय महत्व के विषय के रूप में

मान्यता देते हैं और न्यूजीलैंड हिस्टोरिक प्लेसेज एक्ट, 1993 के अधीन पुरातत्वीय नियंत्रण के अधीन आ जाते हैं। इसके अतिरिक्त, विधेयक का आशय राष्ट्रीय पर्यावरण मानकों और राष्ट्रीय नीति विवरण संबंधी उपबंधों को सुदृढ़ बनाना है। विधेयक में पर्यावरण की नई परिभाषा दी गई है जो जैव भौतिक पर्यावरण पर अधिकाधिक बल देती है और मानवीय स्वास्थ्य, सुरक्षा सुविधा और सांस्कृतिक मूल्यों को सन्निकट लाती है।

अन्य तीन महत्वपूर्ण संशोधन, 'संसाधन स्वीकृति प्रक्रिया', 'सीधे पर्यावरण न्यायालय को निदेश करने' और मामलों की सुनवाई करने और निर्णय करने के लिए 'पर्यावरण कमिश्नरों का प्रयोग' करने से संबंधित है। ये परिवर्तन आवेदकों को इस बात का चयन करने की अनुमति देते हैं कि क्या उनके आवेदनों पर कांउसिल द्वारा कार्यवाही की जाए या किसी प्राइवेट स्वीकृतिदाता द्वारा और जटिल या विवादात्मक आवेदनों को सीधे पर्यावरण न्यायालय को निर्दिष्ट करने की भी अनुमति देते हैं। आवेदकों तथा आवेदनों का विरोध करने वालों को भी ऐसा चयन करने की अनुमति है कि वे काउंसिल से मामले की सुनवाई और निर्णय कराना चाहते हैं या स्वतंत्र कमिश्नर से। इसका उद्देश्य निर्णय करने में निष्पक्षता में सुधार लाना था और यह कि निर्णयकर्ता की ओर से किसी प्रकार के पक्षपात या विवाद का प्रतीत होना दूर किया जा सके।

न्यूजीलैण्ड का विधेयक हाऊस में जुलाई, 1999 में पुरःस्थापित किया गया था और प्रवर समिति की रिपोर्ट 8.5.2002 को आयी थी तथा बिजनैस कण्पलायंस –कॉस्टस् पैनल की रिपोर्ट द्वारा और परिवर्तन करने का सुझाव दिया गया था। सरकार ने आगे और परिवर्तनों की घोषणा की।

न्यूजीलैण्ड रिसोर्स मैनेजमेंट एक्ट, 1991 में 433 धारा, 11 अनुसूची अंतर्विष्ट हैं और अधिनियम पंद्रह भागों में विभाजित है। 1 से 10 भागों के पश्चात् भाग II (धारा 247 से धारा 308) दिया गया है जिसमें पर्यावरण न्यायालय का उल्लेख है। भाग ग्यारह 'घोषणाओं, प्रवर्तन और सहायक शक्तियों' से संबंधित है (धारा 309 से धारा 343घ)।

1991 के न्यूजीलैण्ड अधिनियम के 1999 में किए गए संशोधन के अनुसार धारा 297 से 343घ तक कुल 110 धाराएं पर्यावरण न्यायालय के बारे में हैं। हम कतिपय धाराओं का और भाग-11 तथा 12 के उपशीर्षकों का संक्षेप में निर्देश करेंगे।

धारा 247 में भूतपूर्व आयोजना अधिकरण को पर्यावरण न्यायालय नाम दिया गया है, धारा 248, सदस्यता के बारे में है, धारा 249, पर्यावरण न्यायाधीश या वैकल्पिक पर्यावरण न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति की पात्रता से संबंधित है, धारा 250 में कहा गया है कि ऐसे 8 से अनधिक न्यायाधीश नियुक्त किए जा सकेंगे। मूलतः वे सोवरत जिलाधीश होंगे, धारा 251, मुख्य पर्यावरण न्यायाधीश के बारे में है। धारा 252 में बताया गया है कि वैकल्पिक पर्यावरण न्यायाधीश कब कार्य कर सकेगा।

अधिनियम में पर्यावरण कमिश्नरों तथा डिप्टि कमिश्नरों की अवधारण की गई है। धारा 253, उनकी पात्रता से संबंधित है। इसमें कहा गया है कि पर्यावरण कमिश्नर को निम्नलिखित विषय में ज्ञान और अनुभव होना चाहिए:

(क) अर्थशास्त्र, वाणिज्यिक और कारोबार, स्थानीय प्रशासन और सामुदायिक कार्य;

(ख) आयोजना, संसाधन प्रबंधन और विरासत संरक्षण;

(ग) शारीरिक और सामाजिक विज्ञानों सहित पर्यावरणीय विज्ञान;

(घ) वास्तुकला, इंजीनियरिंग, सर्वेक्षण, खनिज प्रौद्योगिकी और भवन निर्माण;

(घक) वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रियाएं;

(ड) वैथांगी एण्ड कौपापा माओरी संधि से संबंधित विषय।

और धारा 254, 5 वर्ष से अनधिक अवधि के लिए कमिश्नर की नियुक्ति का निर्देश करती है। धारा 255 में उल्लेख किया गया है कि पर्यावरण कमिश्नर कब कार्य कर सकेगा। धारा 256, कमिश्नर या डिप्टि कमिश्नर के लिए पद की शपथ के बारे में है।

धारा 257 और धारा 258 त्यागपत्र देने की प्रक्रिया और अयोग्यता तथा दुर्व्यवहार के कारण न्यायाधीश को



भी हटाने सहित, गवर्नर जनरल द्वारा सदस्यों को हटाए जाने के बारे में हैं। किसी न्यायाधीश को हटाने का तात्पर्य यह नहीं होगा कि जिला न्यायाधीश के रूप में उसकी नियुक्ति भी रद्द हो जाएगी।

धारा 259, विशेष परामर्शदाताओं का निर्देश करती है, धारा 260, पर्यावरण न्यायालय के अधिकारियों का, अर्थात रजिस्ट्रार तथा अन्य अधिकारी। धारा 261, विधिक कार्यवाहियों से संरक्षण का निर्देश करती है। धारा 262, पर्यावरण न्यायालय के सदस्यों का निर्देश करती है जो पौर करदाता होना कोई निर्हता नहीं होगी यदि ऐसे किसी व्यक्ति को पर्यावरण न्यायालय में नियुक्त किया जाता है। धारा 263 पर्यावरण कमिश्नरों और विशेष परामर्शदाताओं के पारिश्रमिकों के बारे में है। धारा 264, रजिस्ट्रार की वार्षिक रिपोर्ट न्यायालयों के प्रभारी मंत्री को प्रस्तुत किए जाने के बारे में हैं।

न्यूजीलैण्ड के अधिनियम में, पर्यावरण न्यायालय की प्रक्रिया के बारे में अलग से उल्लेख किया गया है। धारा 265 में न्यायालय की बैठकों और गणपूर्ति का निर्देश है। गणपूर्ति, कतिपय अन्य धाराओं को छोड़कर जहां गणपूर्ति केवल एक न्यायधीश से ही हो जाती है, एक न्यायाधीश और एक कमिश्नर से मिलकर होगी। न्यायालय के सदस्यों के बहुमत का निर्णय मान्य होगा और यदि बहुमत नहीं है तो पीठासीन सदस्य का निर्णय मान्य होगा। धारा 266 में कहा गया है कि न्यायालय के गठन के बारे में कोई आपत्ति नहीं उठाई जाएगी; धारा 267, सम्मेलन, प्रक्रिया और शक्तियों का निर्देश करती है; धारा 268, सदस्यों में से किसी एक के द्वारा मध्यस्थता, सुलह अथवा अन्य प्रक्रिया द्वारा 'वैकल्पिक विवाद समाधान' का निर्देश करती है। ये व्यक्ति बाद में न्यायाधीशों के रूप में कार्य करने के लिए निर्हर नही होंगे।

न्यायालय की शक्तियों तथा प्रक्रियाओं को बहुत सी धाराओं में परिभाषित किया गया है। धारा 274, कार्यवाहियों में प्रतिनिधित्व से संबंधित है; धारा 274(1) में कहा गया है कि अधिनियम के अधीन न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों में, मंत्री कोई भी स्थानीय प्राधिकारी, कार्यवाहियों में सामान्य जनता से अधिक कोई हित रखने वाला कोई व्यक्ति, लोकहित के किसी संगत पहलु का प्रतिनिधित्व करने वाला कोई व्यक्ति, तथा कार्यवाहियों से संबद्ध कोई पक्षकार उपस्थित हो सकेगा और किसी भी ऐसे विषय पर साक्ष्य की मांग कर सकेगा जिसको कार्यवाहियों के निर्णय करने में ध्यान में रखा जाना चाहिए। अन्य व्यक्तियों को, यदि वे उपस्थित होना चाहते हैं, न्यायालय को 10 दिन का नोटिस देना होगा। धारा 275, व्यक्तिगत रूप में या प्रतिनिधि के रूप में उपस्थिति का निर्देश करती है और धारा 276, 'साक्ष्य' के साथ। इसमें कहा गया है कि न्यायालय कोई भी साक्ष्य प्राप्त कर सकेगा जिसे वह उपयुक्त समझता है या वह ऐसा साक्ष्य मांग सकेगा जिसे वह समझता है कि वह निर्णय करने में या सिफारिश करने में सहायक होगा और इस प्रयोजन से अपने समक्ष उपस्थित होने के लिए किसी भी व्यक्ति को बुला सकेगा। न्यायालय पर, न्यायिक कार्यवाहियों में लागू होने वाले विधि के सिद्धांतों द्वारा कोई रोक नहीं लगाई गई है। धारा 277 में कहा गया है कि सुनवाई तथा साक्ष्य, कतिपय विशिष्ट अपवादों के साथ, सार्वजनिक होनी चाहिए। धारा 278 में कहा गया है कि पर्यावरण न्यायालय को जिला न्यायालय की शक्तियां प्राप्त होंगी, धारा 279 में एकल पर्यावरण न्यायाधीश न्यायपीठ की शक्तियों का निर्देश है। वह कष्टदायी कार्यवाहियों को बंद कर सकेगा। धारा 280, पर्यावरण न्यायाधीशों के बिना अकेले बैठकों वाले पर्यावरण कमिश्नरों की शक्तियों का निर्देश करती है और धारा 281, अधित्यजनों और निदेशों का, धारा 283, उपस्थिति न होने या सहयोग करने से इंकार करने के लिए कार्यवाही करने का; धारा 284, साक्षियों के भत्तों का; धारा 285, जिला न्यायालयों के माध्यम से खर्चों का; धारा 286 खर्चों के बारे में आदेशों को कार्यान्वित करने का और धारा 287 विधि के प्रश्नों को उच्च न्यायालय को निर्दिष्ट करने का निर्देश करती है और धारा 288 में साक्षियों और अधिवक्ताओं के विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों का निर्देश है।

पर्यावरण न्यायालय के समक्ष अपील, जांच तथा अन्य कार्यवाहियों के बारे में धारा 289 से धारा 291 के उपबंधों के अनुसार कार्यवाही की जाती है। धारा 289 अपील के उत्तर या जांच के लिए अनुरोध के बारे में है। धारा 290, अपीलों और जांचों के बारे में पर्यावरण न्यायालय की शक्तियों से संबंधित है; धारा 291, उक्त न्यायालय के समक्ष अन्य कार्यवाहियों के बारे में है।

योजना तथा नीति कथनों के संबंध में, पर्यावरण न्यायालय को विशेष शक्तियां दी गई हैं। धारा 292, 'योजनाओं की खामियों के उपचार के बारे में है; धारा 293, नीति विवरणों और योजनाओं में परिवर्तन करने के लिए न्यायालय की शक्ति से संबंधित है। धारा 294, पर्यावरण न्यायालय के निर्णयों की पुनरीक्षा करने का निर्देश करती है यदि नया और महत्वपूर्ण साक्ष्य उपलब्ध हो जाता है या परिस्थितियों में ऐसे परिवर्तन हुआ है जिससे निर्णय प्रभावित हो सकता है।

धारा 295 में कहा गया है कि पर्यावरण न्यायालय का निर्णय अन्तिम है; धारा 296 में कहा गया है कि 'निर्णयों की पुनरीक्षा नहीं होगी' यदि अपील या निदेश करने के अधिकार का प्रयोग नहीं किया गया है। इस धारा में कहा गया है कि यदि पर्यावरण न्यायालय को किसी मामले का निर्देश किए जाने या किसी स्थानीय प्राधिकारी या अधिनियम के अधीन या किसी अन्य अधिनियम या विनियमों के अधीन किसी व्यक्ति के निर्णय के विरुद्ध उस न्यायालय में अपील करने का अधिकार है तो, ज्यूडीकेचर एक्ट, 1972 के भाग-I के अधीन पुनरीक्षा के लिए कोई आवेदन नहीं किया जा सकेगा और परमादेश, प्रतिषेध या उत्प्रेषण या घोषणा रिट के अधीन कार्यवाही करने के मामले में उच्च न्यायालय द्वारा कोई सुनवाई नहीं की जाएगी ''जब तक कि आवेदक ने कार्यवाहियों के अधीन अधिकार का प्रयोग न किया हो और पर्यावरण न्यायालय द्वारा उस पर कोई निर्णय न दिया गया हो''। धारा 297 में कहा गया है कि न्यायालय का निर्णय लिखित होगा; धारा 298, दस्तावेजों की न्यायिक सूचना का निर्देश करती है।

अगला प्रश्न, पर्यावरण न्यायालय के निर्णय, रिपोर्ट या सिफारिशो के विरुद्ध अपीलों से संबंधित है। धारा 299 में कहा गया है कि विधि के प्रश्न पर अपील उच्च न्यायालय में की जा सकेगी। धारा 300 से धारा 307 तक में पर्यावरण न्यायालय के विरूद्ध की गई अपीलों में उच्च न्यायालय द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया का निर्देश है। धारा 300, अपीलीय न्यायालय में अपीलों के बारे में है।

भाग 12, ऐसी घोषणा, प्रवर्तन तथा सहायक शक्तियों के बारे में है जिनका प्रयोग केवल न्यायाधीश या न्यायालय द्वारा ही किया जाएगा। धारा 309 मे कहा गया है कि कार्यवाहियों की सुनवाई पर्यावरण न्यायाधीश द्वारा की जाएगी। (अर्थात कमिश्नर या डिप्टि कमिश्नर द्वारा नहीं); धारा 310, 311, 312 और 313, घोषणाओं और प्रक्रिया के स्वरूप के बारे में हैं; धारा 314 से धारा 321 पर्यावरण न्यायालय द्वारा प्रवर्तन आदेश से संबंधित है; धारा 322 से धारा 325ख, 'उपशमन सूचनाओं' (न्यूसेंस का उपशमन) तथा न्यायालय में अपील करने तथा रोकादेश के बारे में हैं। धारा 326 से धारा 328, 'अत्यधिक शोर-शराबे'; धारा 329, 'जल की कमी'; धारा 330 और 331, 'आपातकालिक कार्यों; धारा 332 से धारा 335, 'प्रवेश करने की शक्ति और तलाशी'; धारा 336, 'सम्पत्ति की वापसी'; धारा 337, 'वारंट के अधीन जब्त की गई सम्पत्ति की वापसी' से संबंधित है।

अपराधों के बारे में कार्यवाही धारा 338 से धारा 343 के उपबंधों के अनुसार की जाती है। धारा 338 में इस अधिनियम के विरुद्ध अपराधों का निर्देश है; धारा 339 में दो वर्ष तक के कारावास या 200 हजार डालर तक जुर्माना जैसी शास्तियों का निर्देश है और यदि अपराध जारी रहने वाला है तो जुर्माना 1000 डालर प्रतिदिन। कतिपय धाराओं के उल्लंघन का परिणाम संक्षिप्त रूप में दोषसिद्धि होता है; धारा 339क, विदेशी पार्तो के माल के डम्पिंग और निरस्सरण संबंधी अपराधों के लिए कारावास से संरक्षण का निर्देश करती है। धारा 339ख, वाणिज्यिक लाभ हेतु कतिपय अपराधों के लिए उक्त लाभ की तिगुनी राशि की अतिरिक्त शास्तियों का; धारा 339ग, पोत के करस्थम और विक्रय या अधिकर्ता से वसूली जाने वाली जुर्माने की राशि या अन्य धन संबंधी शास्ति का; धारा 340, अधिकर्ता के कार्यों के लिए मालिक के दायित्व का; धारा 341, कडे दायित्व और प्रतिरक्षा का निर्देश करती है। धारा 341 की उपधारा (1) में कहा गया है कि कतिपय धाराओं (धारा 9, 11, 12, 13, 14 और 15) के बारे में किसी अभियोजन में यह आवश्यक नहीं है कि प्रतिवादी का अपराध करने का इरादा था। उपधारा (2), अपवादों की अनुज्ञा देती है, यदि (क): (एक) जीवन या स्वास्थ्य को बचाने या रक्षा करने की या सम्पत्ति की सम्भीर क्षति से रोकने के लिए या पर्यावरण को वास्तविक या संभावित प्रतिकूल प्रभाव से बचाने के लिए कार्य या घटना आवश्यक थी; (दो) उन परिस्थितियों में प्रतिवादी का आचरण न्यायोचित था; और (तीन) कार्य या घटना के घटित होने के पश्चात प्रतिवादी ने उसके प्रभावों को पर्याप्त रूप से कम कर दिया था या उनका उपचार कर दिया था; या (ख) प्राकृतिक आपदा, मशीनी असफलता या तोड़फोड़ सहित कार्य या घटना किसी ऐसे कारणों से हुई थी जो प्रतिवादी के नियंत्रण से बाहर थे और प्रत्येक मामले में, (एक) कार्य या घटना प्रतिवादी को पहले से ही न्यायोचित रूप में ज्ञात हो सकती थी; और (दो) कार्य या घटना घटित होने के पश्चात उसके प्रभावों को प्रतिवादी द्वारा युक्तियुक्त रूप से कम कर दिया गया था या उनका उपचार कर दिया गया था। उपधारा (3) में कहा गया है कि प्रतिरक्षा में उपर्युक्त तर्क न्यायालय की अनुमति से ही दिए जा सकेंगे, यदि इसके लिए नोटिस तामील होने के पश्चात सात दिन के भीतर आवेदन किया गया हो। धारा 341क, अपशिष्ट के डम्पिंग तथा भण्डारण के लिए या ऐसे ही अन्य मामलों के लिए दायित्वों और प्रतिरक्षा के लिए इसी प्रकार के प्रत्युत्तरों का निर्देश करती है। धारा 341ख, हानिकारक पदार्थों के निस्सारण के लिए दायित्वों और प्रतिरक्षाओं का निर्देश करती



है। धारा 15ख का उल्लंघन करते हुए हानिकारक पदार्थों, प्रदूषकों या जल के निस्सारण के मामले में यह आवश्यक नहीं है कि प्रतिवादी का आशय अपराध करना था। दुकानों आदि से निस्सरण के मामले में प्रतिरक्षा के प्रतिवाद वही हैं जो धारा 341 के अधीन दिए गए हैं। धारा 342, अभियोजन संस्थित करने वाले स्थानीय प्राधिकारियों को जुर्माने का संदाय किए जाने के बारे में है। धारा 342, पोतों से होने वाले निस्सारण' का निर्देश करती है। (निरसित कर दी गई)।

नियम या विधि के अतिलंघन संबंधी अपराध धारा 343क में परिभाषित किए गए हैं। अतिलंघन अपराध से ऐसा अपराध अभिप्रेत है तो धारा 360(1) (खक) के अधीन विनियमों में विनिर्दिष्ट किया गया है। उपर्युक्त अपराधों के बारे में 'अतिलंघन शुल्क' से धारा 300(1)(खख) के अधीन बनाए गए विनियमों द्वारा अपराध के लिए अतिलंघन शुल्क के रूप में निर्धारित राशि अभिप्रेत है। धारा 343ख, अतिलंघन अपराध करने का निर्देश करती है और उसमें कहा गया है कि अतिलंघन अपराध करने के कथित आरोपी के विरुद्ध अपराध करने के लिए समरी प्रोसीडिंग्स एक्ट, 1957 के अधीन अभियोजन चलाया जाएगा या धारा 343ग में उपबंधित रूप में उसे अतिलंघन सूचना तामील करायी जाएगी। धारा 343ग में अतिलंघन सूचनाओं का निर्देश है और धारा 343घ स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा 'अतिलंघन शुल्क लगाए जाने के अधिकार' का निर्देश करती है।

ये मूलत: भाग 11 और भाग 12 में पर्यावरण न्यायालयों से संबंधित अधिनियम के उपबंध हैं।

न्यूजीलैण्ड में, पर्यावरण से संबंधित विधियां वाटर एण्ड सोयल कन्जर्वेशन एक्ट, 1967, 'क्लीन एयर एक्ट, 1972', नॉयज़ कन्ट्रोल एक्ट, 1982, मेरीन फार्मिंग एक्ट, 1971, हार्बर एक्ट, 1950, फोरेस्ट एक्ट, हिस्टारिक प्लेसेज एक्ट, लोकल गवर्नमेंट एक्ट, ट्रांजिट न्यूजीलैण्ड एक्ट, आदि हैं।

अनुसूची-1, नीति विवरण और योजनाएं' तैयार करने, परिवर्तन करने तथा उनकी पुनरीक्षा करने के बारे में है। अनुसूची-2 में ऐसे विषयों का निर्देश है जिन्हें नीति विवरण, और योजनाओं में उपबंधित किया जा सकेगा, अनुसूची-3 और, अनुसूची-4 पर्यावरण प्रभाव के निर्धारण के बारे में हैं (11 तक अन्य अनुसूचियां कतिपय अन्य पहलुओं से संबंधित है)।

संक्षेप में, न्यूजीलैण्ड के पर्यावरण न्यायालय के बारे में यह देखा गया है कि यह न्यायालय पर्यावरण न्यायाधीशों से, जो जिला न्यायालय के न्यायाधीश भी हैं, और पर्यावरण कमिश्नरों से मिलकर गठित हुआ है। इस न्यायालय का वैलिंगटन स्थित केन्द्रीय रजिस्ट्री कार्यालय है और इसकी बैठकें समस्त न्यूजीलैण्ड में होती हैं। सामान्यतया, पैनल में एक न्यायाधीश और दो पर्यावरण कमिश्नर होते हैं (उन मामलों को छोड़कर जिनकी प्रवर्तन संबंधी कार्यवाहियों में विधि के प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हों)। न्यायालयों में पक्षकारों का प्रतिनिधित्व वकील करते है, परन्तु कोई भी पक्षकार व्यक्तिगत रूप में उपस्थित हो सकेगा या किसी अभिकर्ता द्वारा उसका प्रतिनिधित्व किया जा सकेगा। न्यायालय साक्ष्य के नियमों से बाध्य नहीं है और कार्यवाहियां साधारण न्यायालयों की तुलना में अपेक्षाकृत कम औपचारिक हैं। न्यायालय के अधिकांश कार्य में लोकहित के प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होते हैं। पर्यावरण अधिकरण की अधिकारिता में निम्नलिखित के अधीन उठने वाले मामले आते हैं, (1) संसाधन प्रबंधन अधिनियम, (2) क्षेत्रीय तथा जिला विवरणों और योजनाओं की स्वीकृतियों के बारे में निर्देश और संसाधन स्वीकृति के आवेदनों से उत्पन्न अपील, (3) स्वीकृति, जिसके लिए आवेदन किया गया है, किसी भूमि के प्रयोग, उप-खंड, समुद्र तटीय परमिट, जल के परमिट, निस्सारण परमिट या इन सभी को मिलाकर बनने वाले विषय के बारे में हो सकती है।

पर्यावरण न्यायालयों के कार्यों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं:

(1) ऊर्जा परियोजनाओं, अस्पतालों, स्कूलों, जेलों, मल व्ययन संबंधी कार्य, कचरे से भूमि का भराव, अग्निशमन केन्द्र, प्रमुख सड़के तथा बाईपास और प्रमुख निजी परियोजनाएं-उदाहरण के लिए, डेयरी, कारखाने पर्यटक स्थल, काष्टमिलें ओर विक्रय केन्द्र जैसे लोक कार्यों को प्राधिकृत करने के लिए निदेश जारी करना।

(2) जल का वर्गीकरण, बांधों के लिए जल के परमिट और पथांतर, भू-तापीय तरल पदार्थों को निकालना, मल व्ययन कार्य, भूमिगत खनन, झीलों का अधिकतम और न्यूनतम स्तर, नदियों का बहाव और न्यूनतम गुणवत्ता मानक और जल परिरक्षण संबंधी आदेश।

(3) भूमि उप-प्रभाग संबंधी स्वीकृतियां तथा शर्तें, विकास लेवी, कार पर्किंग अभिदाय, आरक्षित

अभिदाय, विकास उद्ग्रहण निधि का वितरण सड़कों को सुधारने के लिए अंशदान, क्षेत्रीय सड़कें, सड़कों का सीमित उपयोग और सड़के बंद करना।

(4) भूमिगत, खुले खदान और जलोद मिट्टी के खनन सहित संभावित अन्वेषण और खनन के पर्यावरणीय प्रभाव।

(5) प्रवर्तन कार्यवाहियां, अन्तरिम प्रवर्तन आदेशों सहित वर्तमान तथा प्रस्तावित पर्यावरणीय कार्य और लिखितों के बारे में विधिक स्थिति की घोषणा और दुष्प्रेरण नोटिसों के विरुद्ध अपील।

न्यूजीलैण्ड के पर्यावरण न्यायालय के समक्ष उठने वाले विषय निम्नलिखित हैं:

(1) विद्युत उत्पादन के लिए प्रयोग सहित जल तथा हाइड्रोथर्मल संसाधन।

(2) लोक निधियों का उद्ग्रहण और वितरण (आरक्षित तथा विकास उद्ग्रहण)।

(3) तट, झाड़-झंखाड़, भूमि, झीलें, नदियां और उत्पादक मिट्टी सहित भौतिक पर्यावरण।

(4) शोर-शराबापूर्ण पर्यावरण और शोर-शराबे से पर्यावरण के संरक्षण पर आने वाली लागत।

(5) जन सुरक्षा, उदाहरण के लिए सघन एल॰पी॰जी॰ संस्थापनाएं, भूचाल, बाढ़, भूमि के कटाव को आरक्षित छोड़ना।

(6) आरक्षित स्थलों पर खनन, तटीय पर्यावरण में विकास, क्षेत्रीय आयोजना।

(7) खनन अथवा अन्य औद्योगिक परियोजनाओं के सामाजिक प्रभावों सहित सामाजिक विषय।

**यूनाइटे किंगडम:**

यू॰के॰ में पर्यावरण विभाग 1970 में स्थापित किया गया था। पर्यावरण को शासित करने वाली विधियां वाइल्ड लाइफ एण्ड कन्ट्री साइड एक्ट, 1981, वाटर एक्ट, 1989, प्लानिंग एक्ट, 1990 और एनवायरमेंट प्रोसैक्शन एक्ट, 1990 हैं। टाऊन एण्ड कन्ट्री प्लानिंग एक्ट, 1990 ने इंग्लैण्ड और वेल्स के लिए विधानों को समेकित किया और प्लानिंग एण्ड कम्पेंसेशन एक्ट, 1990 में संशोधन किए गए। स्काटिश विधान टाउन एण्ड कन्ट्री प्लानिंग एक्ट, 1997 है। स्काटिश पर्यावरण संरक्षण एजेंसी की स्थापना 1996 में की गई।

राष्ट्रीय नदी प्राधिकरण (1989 में गठित) तथा हर मजेस्टी के प्रदूषण विभाग द्वारा पहले किए जाने वाले कार्यों को एक साथ किए जाने के लिए इंग्लैण्ड तथा वेल्स में पर्यावरण एजेन्सी की स्थापना 1996 में की गई थी। पर्यावरण अधिनियम, 1995 जो एजेन्सी की शक्तियों के बारे में है, अधिनियमित किया गया।

**आर बनाम सैक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर एनवायरमेंट ट्रांसपोर्ट एण्ड दी रीजनस् एक्सपार्टी एलकनबरी डवलपमेंट लिमिटेड एण्ड अदर्स:** 2001 यू॰के॰एच॰एल॰ 23 मामले में हाऊस ऑफ लार्डस् ने यह अभिनिर्धारित किया कि आयोजना के पृथक-पृथक मामलों में नीति निर्धारक तथा निर्णयकर्ता, दोनों ही रूपों में सैक्रेटरी ऑफ स्टेट की भूमिका (न्यायिक पुनरीक्षा के लिए अधिकार के साथ एक साथ लेने पर) यूरोपीय मानवाधिकार सम्मेलन की अपेक्षाओं के अनुरूप थी।

हाऊस ऑफ लार्डस् का उपर्युक्त निर्णय (पर्यावरण प्रदूषण संबंधी कमीशन के अनुसार) (पर्यावरण आयोजना पर 23वीं रिपोर्ट, मार्च, 2002, पैरा 5.33) केवल सैक्रेटरी ऑफ स्टेट की स्थिति के बारे में था और उसमें यह स्वीकार किया गया था कि सामान्य रूप से आयोजना संबंधी निर्णयों से सिविल अधिकारों के प्रश्न उत्पन्न होते हैं। इस निर्णय ने प्रत्यायोजित निर्णय करने वाले आयोजना निरीक्षकों की स्थिति, तीसरे पक्षकारों का अधिकार किस सीमा तक है, पर्यावरण विनियमों के अन्य क्षेत्र किस सीमा तक ऐसे सिद्धान्तों के समान रूप से अध्ययीन हैं, जैसे प्रश्नों को खुला छोड़ दिया है।

मजिस्ट्रेट न्यायालय, क्राऊन न्यायालय (अपीलीय न्यायालय) दंड अपील न्यायालय, ग्राम्य न्यायालय तथा उच्च न्यायालय आयोजना तथा पर्यावरण संबंधी मामलों के बारे में कार्यवाही करते थे और कह रहे हैं। यह महसूस किया गया था कि आयोजना तथा अपील और प्रवर्तन कार्य संबंधी समस्त मामलों के लिए शास्तियां लगाने सहित, एक न्यायालय तथा अधिकरण होना चाहिए। राबर्ट कार्नवर्थ क्यू॰सी॰ द्वारा 'एनफोर्सिंग प्लानिंग कन्ट्रोल' नामक रिपोर्ट में (एच॰एम॰एस॰ओ॰ मई, 1989) इसका उल्लेख किया गया है। (''एनवायरमेंटल एनफोर्समेंट: दी नीड



फॉर ए स्पेशिलिस्ट कोर्ट'' जनरल ऑफ प्लानिंग एण्ड कम्पेंसेशन एक्ट, 1991 पृष्ट 798)। जबकि प्लानिंग एण्ड कम्पेंसेशन एक्ट, 1991 लाने के लिए कतिपय अन्य सिफारिशों को भी स्वीकार किया गया था, न्यायालयों को एकीकृत प्रणाली की आवश्यकता के बारे में कोई प्रतिक्रिया नहीं दी गई।

लार्ड बुल्फ द्वारा 'आर दी ज्यूडिशियरी एनवायरमेंटली मायोपिक (न्यायपालिका की पर्यावरणीय मामलों में अल्पदृष्टि है)' विषय पर यू॰के॰ई॰एल॰ को दिए गए अपने भाषण में पर्यावरण विधि में बढ़ते हुए विशेषज्ञ ज्ञान की समस्याओं और वर्तमान स्वरूप में अपनी पारंपरिक भूमिका से परे कार्य करने संबंधी न्यायालयों की कठिनाई का सारांश बताया गया। (लार्ड बुल्फ का भाषण 1992 में जे॰ई॰एल॰, खंड 4, सं॰ 1, पी॰ में प्रकाशित हुआ था)। उन्होंने निम्नलिखित के लाभों के बारे में चर्चा करते हुए कहा:

> ''.....पर्यावरण की सुरक्षा के लिए उपबंधित सुरक्षोपायों के निरीक्षण और प्रवर्तन के सामान्य उत्तरदायित्व के एक अधिकरण की स्थापना.....अधिकरण को अपनी प्रक्रिया निश्चित करने के लिए विस्तृत विवेकाधिकार दिए जा सकेंगे ताकि वह पर्यावरण संबंधी विषयों के अपने विशेषज्ञ अनुभवों को प्रभावी रूप में कार्यान्वित कर सके'।

लार्ड बुल्फ के अनुसार अधिकरण को वास्तुविदों, सर्वेक्षकों तथा 'बहु-विषयक न्यायनिर्णयन पैनल का लाभ प्राप्त होना चाहिए। जिससे उपस्थित होने के अधिकारों, अधिकरण या जनता के सदस्यों की ओर से स्वतंत्र परामर्शदाता को अनुदेश देने की शक्ति, स्वयं अधिकरण द्वारा अन्वेषण किए जाने के लिए संसाधन, 'अपेक्षाकृत लघु महत्व' के मामलों के बारे में कार्यवाही करने के लिए वर्तमान निरीक्षणालय को अधिकरण में शामिल करने संबंधी विस्तृत विवेकाधिकार प्राप्त होने चाहिए। लार्ड बुल्फ ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकालते हुए कहा:

> 'मुझे आशा है.....मैंने पर्याप्त कह दिया है.....कि मेरा तात्पर्य न तो किसी अन्य नाम से कोई अन्य मामला स्थापित करना है और न ही वर्तमान अधिकरण को कोई अन्य नाम देना है। यह एक बहु-आयामी और विविध विषयों में दक्ष निकाय होगा जिसमें पर्यावरण के क्षेत्र में वर्तमान न्यायालयों, अधिकरणों और निरीक्षणालयों द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सेवाएं संयोजित होगी। यह एक ऐसा एकल केन्द्र होगा जहां पर्यावरण विषयक विवादों का तीव्रतर, कम खर्चीला और अधिक प्रभावी समाधान प्राप्त हो सकेगा। इससे ऐसे संस्थानों पर भार बढ़ने में कमी आयेगी जिनको ऐसे मामलों का समाधान करने के लिए विवश करने का प्रयास करके पहले से अधिक भार डाला का चुका है जिन मामलों के बारे में कार्यवाही करना उनका उद्देश्य नहीं है। यह एक ऐसी फोरम हो सकेगी जिसमें न्यायाधीश एक पृथक भूमिका निभा सकेंगे। यह ऐसी भूमिका होगी जिसमें वे पर्यावरणीय समस्याओं को एक सीमित दृष्टिकोण से जांच नहीं कर सकेंगे। यह, वर्तमान निरीक्षणालय, भूमि अधिकरण तथा अन्य प्रशासनिक निकायों की दक्षताओं को समेकित करके, हमारे वर्तमान अनुभव पर आधारित होगा। यह एक उत्प्रेरक परियोजना हो सकेगी।'

राबर्ट कार्नवर्थ, क्यू॰सी॰ के लेख में, जिसका निदेश पहले किया जा चुका है, लेखक ने, (I) प्रवर्तन प्रक्रियाओं; (II) लोक-जांच; (I) न्यायिक पुनरीक्षा और सांविधिक अपील; (Iv) स्थानीय प्राधिकरण; और (v) भूमि अधिकरण जैसे क्षेत्रों में इंग्लैण्ड में वर्तमान अधिकारिता की शक्ति और दुर्बलता के विषय में विचार किया है और कहा है:

> 'सर हैरी बुल्फ द्वारा दी गई प्रेरणा से, अब ऐसा अवसर आ गया है कि पर्यावरण विधि के पर्यवेक्षण से संबंधित न्यायालयों और अधिकरणों की संरचना की पुनरीक्षा की जाए। ऐसी वर्तमान पुनरीक्षा प्रणाली में, व्यवहारिक रूप में कार्यरत विशेषज्ञ न्यायाधीश तथा वकील; स्थानीय प्रधिकरण; आयोजना निरीक्षणालय, स्थानीय प्राधिकारी तथा अन्य सुसंगत लोक अभिकरण, स्वैच्छिक वर्ग, व्यापारिक संगठन आदि-सभी के विचारों और अनुभवों को समेकित करके आरम्भ की जानी चाहिए। उद्देश्य, वर्तमान व्यवहार और प्रकिया, जो कुछ सर्वोत्तम है, उसे समविष्ट करते हुए, एक युक्तियुक्त और सरल संरचना विकसित करना होना चाहिए।'

लार्ड बुल्फ ने फिर से मई, 2001 में दिए गए अपने एक अन्य भाषण में यह सुझाव दिया था कि अब पर्यावरण न्यायालय या अधिकरण को नया रूप दिया जाना चाहिए। यह 'पर्यावरण संबंधी खतरे: विधि तथा विज्ञान का उत्तरदायित्व' विषय पर 'एनवायरमेंटल ला फाऊंडेशन, प्रो॰ डेविड हॉल मैडिकल लैक्चर' में बोलते हुए कहा था।

इस स्तर पर कैम्ब्रिज के प्रो॰ मैलकम ग्रान्ट द्वारा प्रमुख अध्ययन किया गया जो 'एनवायरमेंट कोर्ट प्रोजेक्ट' (पर्यावरण न्यायालय परियोजना) के नाम से जाना जाता है। इस परियोजना पर रिपोर्ट 18 फरवरी, 2000 को प्रकाशित हुई। यह रिपोर्ट कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी के लैण्ड-इकानोमी विभाग द्वारा तैयार की गई थी। डिपार्टमेंट ऑफ एनवायरमेंट ट्रांस्पोर्ट एण्ड रीजनस् (आई ई टी आर) द्वारा प्रारम्भ की गई और समर्थित परियोजना को आयोजना निरीक्षणालय द्वारा 1995-96 में किए गए वित्तीय प्रबंधन और कार्य निष्पादन पुनरीक्षा का समर्थन प्राप्त था। परियोजना का उद्देश्य आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड जैसे देशों के अनुभवों की पृष्ठभूमि में, पर्यावरण न्यायालय की अवधारणा का अध्ययन करना था। रिपोर्ट में निम्नलिखित दस लक्षणों का अभिज्ञान किया गया जो इस अवधारणा को परिभाषित करने में सहायक हैं, यद्यपि, इसमें यू॰ के॰ के लिए ऐसे न्यायालय के लिए निश्चित रूप में सिफारिश नहीं की गई (2000 जे॰ पी॰ एल॰ , पृ. 453, 'दी केस फॉर एनवायरमेंट कोर्ट' देखें) ये लक्षण है:

(क) एक विशेषज्ञ तथा अनन्य अधिकारिता;

(ख) गुणावगुण अपीलें निश्चित करने की शक्ति;

(ग) उर्ध्व तथा समतल एकीकरण- (जिसका अर्थ है विस्तृत पर्यावरणीय अधिकारिता जो अन्तर्वस्तु तथा विभिन्न प्रकार की विधिक कार्यवाहियों को एकीकृत करती है);

(घ) किसी न्यायालय या अधिकरण के प्रमाणक;

(ङ) विवाद समाधान शक्तियां-(नीति निर्धारण संबंधी विवाद तथा पारंपरिक न्यायनिर्णय संबंधी विवाद);

(च) विशेषज्ञ-ज्ञान (सदस्य पर्यावरण संबंधी विषयों के विशेषज्ञ होंगे);

(छ) पहुंच-(न्यायालय में पहुंचने के प्रमुख अधिकार होंगे);

(ज) कार्यवाहियों की अनौपचारिकता (जैसे, वैकल्पिक विवाद समाधान प्रकियाओं का प्रयोग);

(झ) खर्चे (यह पहुंच की आवश्यकता से संबंधित है और इसके अन्तर्गत पहुंच को अवरुद्ध करने वाले अत्याधिक खर्चों की समस्या से निपटने के साधन भी अन्तर्ग्रस्थ हैं); और

(ञ) सूचना देने के लिए क्षमता।

ऐसी टिप्पणियां की गई है कि उपर्युक्त दस लक्षण सामान्य है और स्पष्ट नहीं हैं। जबकि यह सच है कि उपर्युक्त मानदंड विभिन्न प्रकार के आधुनिक न्यायालयों और अधिकरणों के लिए, जिनके लिए पर्यावरण संबंधी मामलों के बारे में कार्यवाही करना आवश्यक नहीं है, सामान्य हो सकते हैं, वहां तथ्य यह भी है कि ये सामान्य लक्षण पर्यावरण न्यायालयों के लिए भी उपयुक्त हैं और लागू होते है।

मई, 2000 में प्रकाशित हुई प्रो॰ मैलकम ग्रान्ट की परियोजना रिपोर्ट में 'आयोजना अपीलीय अधिकरण' से लेकर 'पर्यावरण न्यायालय' तक उच्च न्यायालय की डिवीजन के रूप में, छः वैकल्पिक व्यवस्थाएं दी गई हैं।

जहां तक नगर तथा ग्राम्य आयोजना प्रणालियों का संबंध है, निःसंदेह रॉयल कमीशन ने अपनी पर्यावरण आयोजना विषयक 23वां रिपोर्ट में (मार्च, 2000) (पैरा 5.35) कहा है कि आवश्यकता ''एक ऐसी प्रणाली की है जिसे जनता का विश्वास प्राप्त हो, जो अनुरूपता में सुधार लाती हो, निर्णय लेने में प्रभावी हो और अनावश्यक रूप से खर्चीली न हो।'' हमारा मुख्य उद्देश्य गुणावगुण अपील है। उच्च न्यायालयों में स्थापित किए गए प्रशासनिक न्यायालयों की व्यवस्था के साथ, हम इस बात से सहमत नहीं हैं कि नगर तथा ग्राम्य आयोजना के बारे में विधिक आधारों पर न्यायिक पुनरीक्षा या विधिक अपीलों के बारे में कार्यवाही करने के लिए विशेषज्ञ पर्यावरण न्यायालय की कोई आवश्यकता नहीं है। अयोजना तथा पर्यावरण विषयों से संबंधित दांडिक अपराध के मामले साधारण दांडिक न्यायालयों के लिए छोड़े जाना संभावतया उत्तम है? यद्यपि दंडादेश के लिए, विशेषकर मजिस्ट्रेटों के लिए, उन्नत मार्ग निर्देशन और अधिक प्रशिक्षण की आवश्यकता है।



अन्ततः, रॉयल कमीशन ने नगर तथा ग्राम्य आयोजना प्रणालियों से बाहर पर्यावरणीय मामलों के लिए पर्यावरण न्यायालय स्थापित करने की निम्नलिखित सिफारिश की है:

> ''............इस समय, गुणावगुण के आधार पर अपील करने के अधिकार और ऐसी अपीलों का निर्णय कौन करता है, दोनों ही स्तरों पर बहुत अननुरूपता है। कुछ अपीलें सैक्रेटरी ऑफ स्टेट को की जाती हैं। प्रदूषित भूमि या कानूनी न्यूसेंस से संबंधित अन्य अपील मजिस्ट्रेट के न्यायालयों में की जाती है। जिन्हें अन्तर्ग्रस्त पर्याप्त तकनीकियों के बारें में कार्यवाही करने के लिए विशेषज्ञता प्राप्त नहीं होती है। बहुत से मामलों में, उदाहरण के लिए, प्राण उपांतरित अनुवांशिकी जीव के संदर्भ में स्वीकृति प्रदान करने के मामले में, गुणावगुण के आधार पर अपील करनें का कोई अधिकार नहीं है। प्रक्रियाएं आकस्मिक रूप से विकसित हैं और इनमें कोई अन्तर्निहित सिद्धान्त नहीं है, और हम समझते हैं कि वे समसामयिक आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त उपलब्ध प्रणाली कराने में विफल हैं। हम, नगर तथा ग्राम्य आयोजना प्रणाली के अतिरिक्त, पर्यावरण विधान के अधीन, अब आयोजना निरीक्षकों द्वारा सुनी जाने वाली अपीलों सहित, अपीलों की सुनवाई के लिए पर्यावरण अधिकरणों की स्थापना की सिफारिश करते हैं। (पैरा 5.36)

रॉयल कमीशन ने (पैरा 3.37) यह विचार व्यक्त किया है कि पर्यावरण अधिकरण स्थापित करना सुसंगत और प्रभावी पर्यावरण विनियमन प्रणाली के लिए एक महत्वपूर्ण योगदान होगा। इसके गठन और इसके निर्णय के विरुद्ध अपील करने के बारे में कमीशन ने कहा था:

> ''हमारा विचार है कि इस प्रकार का अधिकरण एक विधिक पीठासीन अधिकारी और युक्तियुक्त विशिष्ट विशेष ज्ञान प्राप्त सदस्यों से मिलकर गठित होगा। अधिकरण पर्यावरण के जटिल मामलों पर कार्यवाही करने के लिए अपेक्षित प्राधिकार और बोध का तीव्रता से विकास करेगा। हमारा विचार है कि समस्त इंग्लैण्ड के लिए अनेक अधिकरण स्थापित किए जाएंगे और वेल्स, स्कॉटलैण्ड तथा नारदर्न आयरलैण्ड के लिए भी ऐसे ही अधिकरण स्थापित किए जाएंगे। विधि के प्रश्नों पर अधिकरण से उच्च न्यायरलय में अपील करने का अधिकार होगा। न्यायिक पुनरीक्षा या पर्यावरण संबंधी आवेदनों पर उच्च न्यायालय द्वारा तब तक सुनवाई नहीं की जा जाएगी जब तक कि आवेदक पर्यावरण अधिकरण या अन्य स्रोतों से उपलब्ध कोई समाधान प्राप्त करने का प्रयास नहीं कर लेता।''

भारत में हमारे उच्च न्यायालयों द्वारा अनुच्छेद 226 की अधिकारिता के अधीन प्रयोग किया जाने वाला 'वैकल्पिक समाधान' का सिद्धान्त यहां स्पष्टरूप से स्वीकार किया गया है।

पर्यावरण न्यायालयों की अधिकारिता और शक्तियों के बारे में रॉयल कमीशन ने कहा है (पैरा 5.38):

> ''पर्यावरण अधिकरण की अधिकारिता सरकार द्वारा निश्चित की जाएगी परन्तु हमने कोष्ठ 5ख में विभिन्न उपयुक्त क्षेत्र दर्शाए हैं। हमारा विचार है कि सिविल मामले सिविल न्यायालयों द्वारा और दांडिक दंड न्यायालयों द्वारा सुने जाएंगे। संदूषित भूमि या सांविधिक न्यूसेंस जैसे विषयों पर, नए अधिकरणों के कृत्य मजिस्ट्रेट न्यायालयों की वर्तमान अधिकारिता के समान होंगे। यद्यपि, सामान्यतया, अधिकरण को उसके समक्ष दायर की गई अपीलों पर निर्णय करने के अन्तिम अधिकार प्राप्त होंगे परन्तु नीति संबंधी गम्भीर संवेदनशीलता के मामलों पर अधिकरण को अन्तिम निर्णय करने के बजाए मंत्री को सिफारिश करनी चाहिए और अलकनबरी निर्णय में यह बात अन्तर्निहित है कि उस प्रकार की व्यवस्था मानवाधिकार अधिनियम के अनुरूप है और इस प्रकार तब यह आयोजना निरीक्षक की व्यवस्था के समान होगी जहां आयोजना अपील सैक्रेटरी ऑफ स्टेट द्वारा प्राप्त की जाती है। अधिकरण का मुख्य कार्य अपीलों की सुनवाई होगा, परन्तु उसकी कुछ मूल अधिकारिता भी होगी, उदाहरण के लिए–सांविधिक न्यूसेंस के बारे में निर्णय करना जिनके बारे में वर्तमान में शिकायतें मजिस्ट्रेट के न्यायालय में की जाती हैं।''

इस प्रकार, प्रस्ताव यह है कि पर्यावरण न्यायालयों को अपीलीय तथा मूल अधिकारिता प्राप्त होगी। ये न्यायालय सामान्य न्यायालयों की सिविल और दांडिक अधिकारिता को समाप्त नहीं करेंगे अपितु ये पर्यावरण संबंधी विषयों पर विशेष न्यायालय होंगे।

कोष्ठ 5ख में नीचे एक चार्ट दिया गया है जिसके नीचे हमने नए क्षेत्रीय पर्यावरण अधिकरणों की व्यवस्था का निर्देश किया है जो पर्यावरण विषयों संबंधी अपीलों की सुनवाई करेंगे। ये अपील (क) पर्यावरण अभिकरणों के निर्णयों के विरुद्ध (आई॰पी॰सी॰, जलमार्गों में निस्सारण, अपशिष्ट लाइसेंस आदि); (ख) संदूषित भूमि या सांविधिक न्यूसेंस के बारे में स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा तामील कराए गए नोटिसों के विरुद्ध की गई अपीलें, जो वर्तमान में मजिस्ट्रेट न्यायालय द्वारा सुनी जाती हैं; (ग) विशेष वैज्ञानिक महत्व और पशु-पक्षियों के प्राकृतिक निवास स्थलों का अभिहित किया जाना; (घ) आनुवांशिकी उपांतरित जीवों के लिए लाइसेंसों के बारे में सैक्रेटरी ऑफ स्टेट का निर्णय और ऐसे मामलों में सरकार के निर्णय, जहां इस समय न्यायिक पुनरीक्षा के अतिरिक्त कोई अन्य अपील करने का अधिकार नहीं है।

यू॰के॰ में, दांडिक न्यायालय पर्यावरण संबंधी अपराधों के बारे में उसी प्रकार कार्यवाही करते रहेंगे जैसेकि वर्तमान में कर रहे हैं। प्रत्येक काऊंटी में एक न्यायालय पर्यावरण अपराधों के विषय में कार्यवाही करने के लिए अभिहित किया जा सकेगा। सिविल न्यायालय न्यूसेंस या उपेक्षा जैसे विषयों पर प्राइवेट पक्षकारों के बीच पर्यावरण संबंधी विवादों पर कार्यवाही करते रहेंगे।

कमीशन ने पर्यावरण अधिकरण तथा आयोजना निरीक्षणालय, दोनों को मिलाकर 'आयोजना तथा पर्यावरण अधिकरण' स्थापित करने के सिफारिश की है (प्रो॰ ग्रान्ट द्वारा सुविचारित कतिपय विकल्पों के आधार पर)। इससे मानव-अधिकार अधिनियम के संबंध में आयोजना निरीक्षकों की स्थिति के बारे में संदेहों का समाधान हो जाएगा। इससे भूमि के प्रयोग के लिए अपील प्रणाली और अधिक विशिष्ट पर्यावरण विनियमन की प्रक्रियाओं के बीच एक निश्चित संस्थागत सम्पर्क स्थापित होने का लाभ प्राप्त हो सकेगा। रॉयल कमीशन ने कहा था कि इस प्रकार का कार्य कुछ समय पश्चात किया जा सकेगा। परन्तु आयोग का विचार था कि अधिकरण के लिए अत्याधिक अपीलों के भार से डूब जाने का खतरा उठाने के बजाय पर्यावरण विनियमन की अनेक प्रकार की अन्य प्रक्रियाओं का अधिग्रहण और समेकन करके कार्य आरम्भ किया जाना बेहतर होगा।

जहां तक न्यायिक पुनरीक्षा के मामलों को सुने जाने के अधिकार का संबंध है, रॉयल कमीशन ने उदार दृष्टिकोण अपनाते हुए कहा है (पैरा 5.40 देखें) कि:

> "गुणावगुण अपीलों और न्यायिक पुनरीक्षा के बीच महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि न्यायिक पुनरीक्षा के रूप में अपील केवल आवेदकों के लिए ही सीमित नहीं है। पड़ोसी तथा सुविधा ग्रुप जैसे तीसरे पक्षकार भी, आयोजना अनुज्ञा प्रदान करने के लिए स्थानीय आयोजना प्राधिकरण के निर्णय, आई॰पी॰पी॰सी॰ लाइसेंस देने के पर्यावरण अभिकरण के निर्णय, या किसी गुणावगुण अपील पर सैक्रेटरी ऑफ स्टेट के निर्णय के विरुद्ध न्यायिक पुनरीक्षा के लिए आवेदन कर सकेंगे। ऐसा करने के लिए उन्हें न्यायालय को इस बात से संतुष्ट करना होगा कि उनका पर्याप्त हित अन्तर्निहित है..... समसमयिक व्यवहार अत्याधिक उदार है। स्थानीय सुविधा ग्रुपों तथा राष्ट्रीय पर्यावरण संगठनों को न्यायिक पुनरीक्षा के लिए बार-बार अनुमति दी गई है, विशेषकर जब उन्होंने मूल आवेदनों के बारे में अभ्यावेदन किया हो।"

तत्पश्चात, रॉयल कमीशन ने 1990 के ई॰सी॰ निदेशों, जो यू॰के॰ में पर्यावरण सूचना विनियम, 1992 द्वारा कार्यान्वित किए गए, 'सूचना पाने, निर्णय करने में लोक भागीदारी और पर्यावरण संबंधी विषयों पर न्याय पाने' विषय पर 1998 के कन्वेंशन (पैरा 5.41 से पैरा 5.47 तक देखें) और आयोजना तथा विकास तथा पर्यावरण संबंधी मामलों पर व्यक्ति को सुने जाने के अधिकार जैसे विभिन्न पहलुओं का निर्देश किया।

पर्यावरण संबंधी मामलों के लिए यू॰के॰ में अभी तक पर्यावरण अधिकरण स्थापित नहीं हुए हैं परन्तु हमें ऐसा प्रतीत होता है कि देश में शीघ्र ही ऐसे न्यायालय स्थापित करने की प्रक्रिया चल रही है।

यू॰के॰ के संबंध में इस विषय पर निम्नलिखित साहित्य उपलब्ध हैं:

(i) विलियम बर्टीज : "व्हाई वी नीड एन एनवासरमेंट कोर्ट"
[लीगल वीक, 2000, 2(1) 19]

(ii) फैशफील्डस् : "दी एनवायरमेंट कोर्ट कन्सैप्ट"
[कॉम एल॰ जे॰ 2000, 17(28-31)]



(iii) एडीटोरियल् : "दी केस फॉर एनवायरमेंट कोर्ट"
[(2000), जे॰पी॰एल॰ 453]

(iv) एडीटोरियल् : "दी गवर्नमेंट रैस्पॉन्स टू दी ग्रान्ट रिपोर्ट ऑन एन एनवायरमेंट कोर्ट"
[(2000), जे॰पी॰सी॰बी॰ 95]

(v) पौला डी प्रेज : "एन एनवायरमेंट कोर्ट, दी केस फॉर इन्क्लूजन ऑफ ए क्रिमिनल ला ज्यूरिसडिक्शन" (एनवायरमेंटल ला एण्ड मैनेजमेंट)
[(2000) 12(5), 191]

(vi) मार्टिन डे, रिचर्ड स्टेन और विलियम बर्टीज : "एन एनवायरमेंट कोर्ट, पार्ट-I [(2001) 151 न्यू एल॰जे॰ 630; पार्ट-II (2001) 151 न्यू एल॰जे॰ 672]

(vii) "डू वी नीड एन एनवायरमेंट कोर्ट?"
(इन हाऊस लॉयर नं॰ 81, जून, 2000, 64)

**कनाडा, यूरोप और अमरीका**

हम विस्तार में न जाते हुए संक्षेप में यही कहेंगे कि कनाडा, यूरोप और अमरीका में पर्यावरण संबंधी विवादों पर निम्नलिखित न्यायालयों द्वारा निर्णय दिया जाता है:

(अ) **कनाडा:**

(क) अल्बर्टा : एनवायरमेंटल अपील बोर्ड

(ख) आनटैरियो : एनवायरमेंटल असेसमेंट एण्ड अपीलस् बोर्डस्

(आ) **यूरोप:**

(क) डेनमार्क : अपील बोर्ड

(ख) आयरिश रिपब्लिक : दी प्लानिंग अपील बोर्डस्

(ग) स्वीडन : एनवायरमेंटल कोर्टस् एण्ड एनवायरमेंटल कोर्ट ऑफ अपील (न्यू एनवायरमेंटल कोड देखें)

जेम्स हर्स्ट : स्वीडन : दी एनवायरमेंटल कोड, ई॰ई॰एल॰आर॰ (1999) 8(5) पी॰पी॰ 134-135 भी देखें

(इ) **अमरीका** : "दी वरमोन्ट एनवायरमेंटल कोर्ट"

## अध्याय-पांच

## भारत में इस समय पर्यावरण न्यायालय या अपीलीय पर्यावरण निकाय

### विभिन्न सिविल, दांडिक तथा संवैधानिक न्यायालयों की सामान्य अधिकारिता

हमने अध्याय-तीन में विस्तार से, उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय द्वारा क्रमशः अनुच्छेद 226 और अनुच्छेद 32 के अधीन विभिन्न पर्यावरण संबंधी विषयों पर प्रयोग की गई विस्तृत शक्तियां दर्शाते हुए, निर्णय जनित विधि का निर्देश किया है। इन वरिष्ठ न्यायालयों के अतिरिक्त, अधीनस्थ सिविल न्यायालय, लोक तथा वैयक्तिक प्रदूषण के बारे में शक्तियों का प्रयोग करते हैं (सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 9 और धारा 91 भी देखें)। दांडिक न्यायालय भी पर्यावरण संबंधी अपराधों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की विभिन्न धाराओं के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हैं। भारतीय दंड संहिता के अध्याय-चौदह में धारा 269, 270 के अधीन आने वाले अपराधों का निर्देश है। संक्रामक रोगों के नियमों की उपेक्षा करके द्वेषपूर्वक ऐसे कार्य करना जिनसे जीवन के लिए खतरनाक संक्रामक रोग फैलने की संभावना है (धारा 271 देखें) जलस्रोत या जलाशय के जल को दूषित करना (धारा 278), विषैले पदार्थ, अग्नि या ज्वलनशील सामग्री, विस्फोटक पदार्थ, मशीनरी की व्यवस्था, किसी मकान को गिराने या मरम्मत करने या पशु के संबंध में उपेक्षापूर्ण आचरण (धारा 291), दूसरे व्यक्तियों के जीवन और व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए संकट पैदा करने वाले कार्य करना (धारा 336 से धारा 338), रिष्टि (धारा 425), कृषि कार्यों को क्षति पहुंचाने या जल प्रदाय में कमी करने वाले रिष्टि कार्य (धारा 430), सार्वजनिक सड़क पुलों, नदी या सारिणी को क्षति पहुंचाने वाली रिष्टि, सार्वजनिक जल निकास में हानिप्रद जल प्लावन या बाधा उत्पन्न करने वाली रिष्टि (धारा 432), सदोष मानव-वध (धारा 299 से धारा 304क)। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अध्याय-दस में भी मूल विधि के विभिन्न उपबंधों को लागू करने के लिए उपबंध अंतर्विष्ट किए गए हैं (धारा 133, दंड प्रक्रिया संहिता)।

इसके अतिरिक्त, जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974 की धारा 41 से धारा 50 द्वारा (अध्याय-सात), वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण), अधिनियम, 1981 की धारा 37 से धारा 46 तक द्वारा, वन (परिरक्षण) अधिनियम, 1980 की धारा 3क और 3ख द्वारा, वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा 51 से धारा 58 (अध्याय-छः) द्वारा तथा पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा 15 से धारा 17 द्वारा नए अपराध सृजित किए गए हैं। इस समय इन सभी अपराधों के बारे में सुनवाई सामान्य दांडिक न्यायालयों में ही होती है। सुसंगत दांडिक न्यायालय मामले के बारे में कार्यवाही करेगी और इसका अभिज्ञान, क्षेत्रीय अधिकारिता के आधार पर और किसी व्यक्ति को कितने वर्ष तक कारावास का दंड देने की उसकी शक्ति है इस बात पर निर्भर करते हुए किया गया है। दांडिक अपील, दंड प्रक्रिया से संबंधित विधियों द्वारा शासित होती है।

यह बात स्पष्ट है कि एक बार उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी न्यायालय द्वारा ऐसा संज्ञान कर लिए जाने पर कि विषय सिविल या आपराधिक स्वरूप का है, उस पर कार्यवाही अन्य मामलों के साथ ही, पर्यावरण संबंधी मामलों को कोई प्राथमिकता दिए बिना ही, उक्त सिविल या दांडिक न्यायालय द्वारा की जाएगी। यह ठीक है कि यदि मामले प्रभावित पक्षकार या पक्षकारों द्वारा या जनहित याचिका में रिट अधिकारिता के अधीन उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में लाया जाता है तो ये न्यायालय मामले पर तेजी से कार्यवाही करते हैं परन्तु ऐसे मामले पर दिन-प्रतिदिन के आधार पर कार्यवाही नहीं की जाती जैसीकि पर्यावरण न्यायालय द्वारा की जा सकेगी जो केवल पर्यावरण संबंधी मामलों के बारे में ही कार्यवाही करेगा।

हमारा कहने का तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त न्यायालयों में से कोई भी ऐसा न्यायालय नहीं है जिसकी पर्यावरण विषय पर अनन्य अधिकारिता हो और इसका परिणाम यह होता है कि ऐसे मामलों के निपटान में, केवल पर्यावरण न्यायालय द्वारा मामले के निपटान में लिए जाने वाले समय की तुलना में, अधिक समय लगता है। यह विषय निर्विवाद है कि पर्यावरण से संबंधित मामलों पर शीघ्र कार्यवाही होनी चाहिए, समय-समय पर उनकी निगरानी की जानी चाहिए और उनका निपटारा वर्तमान प्रचलित प्रक्रिया की तुलना में तीव्र गति वाली प्रक्रिया द्वारा किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, न्यायालयों में इस समय पर्यावरण संबंधी विषयों के बारे में न्यायालय से सम्बद्ध किसी सांविधिक पैनल द्वारा स्वतंत्र विशेषज्ञ परामर्श उपलब्ध नहीं है और वे अधिकांशतः पक्षकारों द्वारा दिए जाने वाले





विशेषज्ञ साक्ष्य पर ही निर्भर करते हैं। हम पिछले अध्यायों में बता चुके हैं कि ऐसे मामलों पर कार्यवाही करने के लिए पर्यावरण में विशेषज्ञों को न्यायालयों से सम्बद्ध किए जाने की आवश्यकता है।

### विशेष अधिनियम और अपीलीय शक्तियां

**पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियम:**

पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा 3(3), अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार को, ऐसी शक्तियों और कृत्यों के (धारा 5 के अधीन निदेश देने की शक्ति सहित) प्रयोग और निर्वहन के प्रयोजनों के लिए और धारा 3(2) में निर्दिष्ट ऐसे विषयों की बाबत उपाय करने के लिए और केन्द्रीय सरकार के अधीक्षण और नियंत्रण के अधीन रहते हुए, प्राधिकरण या प्राधिकरणों का गठन करने की शक्ति प्रदान करती है।

पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा 25 के अधीन विभिन्न नियम बनाए गए हैं। ये नियम ऐसे 'प्राधिकरणों' का उपबंध करते हैं जो नियमों को कार्यान्वित करते हैं और ऐसे 'अपीलीय प्राधिकरणों' का भी उपबंध करते हैं जो सभी सरकारी अधिकारी या विभाग हैं। धारा 25 के अधीन बहुत से नियम बनाए गए हैं। अधिनियम के अधीन प्राधिकरणों की नियुक्ति के संबंध में बनाए गए कुछ नियमों में अपीलीय प्राधिकरण विहित नहीं किए गए हैं।

परिसंकटमय अपशिष्ट (प्रबंधन और हथालना) नियम, 1989 के नियम 18 में राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के सदस्य-सचिव द्वारा (बोर्ड द्वारा पदनामित किसी अधिकारी द्वारा) प्राधिकृत करने या करने से इंकार करने के किसी आदेश के विरुद्ध राज्य सरकार के पर्यावरण विभाग के सचिव को अपील करने का उपबंध किया गया है।

परिसंकटमय रसायनों के विनिर्माण, भंडारण और परिसंकटमय रसायनों के आयात के बारे में 1989 के नियमों में, नियम 2(ख) अनुसूची-5 के कॉलम 2 में विनिर्दिष्ट प्राधिकारी, ऐसे प्राधिकारी का निर्देश करता है जो नियम 3 के अधीन विभिन्न कृत्यों का निष्पादन करेगा। उक्त अनुसूची-5, कार्य करने के लिए विभिन्न प्राधिकरणों या व्यक्तियों को पदाभिहित करती है, जैसे (1) पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के अधीन पर्यावरण तथा वन मंत्रालय; (2) आयात और निर्यात (नियंत्रण) अधिनियम, 1947 के अधीन मुख्य नियंत्रक, आयात-निर्यात; (3) पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के अधीन केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण या राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड या कमेटी; (4) कारखाना अधिनियम, 1948 के अधीन मुख्य निरीक्षक, कारखाना; (5) डॉक कर्मकार (सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण) अधिनियम, 1987 के अधीन नियुक्त मुख्य निरीक्षक, डॉक सुरक्षी; (6) खान अधिनियम, 1952 के अधीन नियुक्त मुख्य खान निरीक्षक; (7) परमाणु ऊर्जा अधिनियम, 1972 के अधीन नियुक्त परमाणु ऊर्जा विनियमनकारी बोर्ड; (8) विस्फोटक अधिनियम तथा नियम, 1973 के अधीन नियुक्त मुख्य नियंत्रक, विस्फोट। इन नियमों में अपील के लिए कोई उपबंध नहीं किया गया है।

न्यायपालिका ठोस अपशिष्ट (प्रबंध और हथालना) नियम, 2000 में नगरपालिका प्राधिकरण, राज्य सरकारों, संघ राज्यक्षेत्रों, केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों या कमेटियों द्वारा विभिन्न कार्य किए जाएंगे। अपील करने के लिए कोई उपबंध नहीं किया गया है।

ओजोन को खाली करने वाले पदार्थ (विनियम और नियंत्रण) नियम, 2000 की अनुसूची पांच में विनिर्दिष्ट प्राधिकारी द्वारा विभिन्न कार्य निष्पादित किए जाएंगे। इस प्रकार कॉलम 4 में प्राधिकारी विनिर्दिष्ट किया गया है और कॉलम 6 में अपीलीय प्राधिकारी। अपीलीय प्राधिकारी, सचिव, पर्यावरण और वन मंत्रालय या कतिपय मामलों में, उसी मंत्रालय में उप सचिव हैं।

शोर प्रदूषण (विनियम और नियंत्रण) नियम, 2000 में, नियम 2(ग) में प्राधिकारी ऐसा प्राधिकारी या अधिकारी के रूप में परिभाषित किया गया है जो, यथास्थिति, केन्द्रीय या राज्य सरकार द्वारा प्रवृत्त विधि के अनुसार प्राधिकृत किया गया हो और इनमें जिलाधीश, पुलिस आयुक्त या कोई अन्य अधिकारी, जिसकी रैंक पुलिस उपाधीक्षक से कम न हो। नियम 2(घ) में 'न्यायालय' की परिभाषा दी गई है परन्तु न्यायालय के कार्यों के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया गया है। किसी अपीलीय प्राधिकारी का निर्देश नहीं किया गया है।

जैव चिकित्सीय उपशिष्ट (प्रबंधन और हथालना) नियम, 1998 में नियम 7 में नियमों के प्रवर्तन के लिए विहित प्राधिकारी परिभाषित किया गया है और राज्यों में राज्य प्रदूषण बोर्ड और संघ राज्यक्षेत्रों में इसी प्रकार की समितियां। नियम 3 में राज्य सरकार या संघ राज्यक्षेत्रों द्वारा अधिसूचित किए जाने वाले प्राधिकारी को अपीलीय प्राधिकारी के रूप में परिभाषित किया गया हैं।

इस प्रकार यह देखा जा सकेगा कि पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा 3 के अधीन बनाए गए विभिन्न नियमों में प्राधिकारी/(या कतिपय मामलों में) अपीलीय प्राधिकारी का उल्लेख किया गया है परन्तु किसी न्यायिक निकाय को कोई अपील करने की व्यवस्था नहीं है और न ही अपीलीय प्राधिकारियों के लिए, जहां अपील प्राधिकरण गठित किए जाते हैं, किसी विशेषज्ञ सहायता का उपबंध किया गया है।

**जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 और उसके अधीन बनाए गए नियम:**

जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 में, राज्य बोर्ड के आदेशों से पीड़ित व्यक्ति द्वारा की गई अपीलों पर कार्यवाही करने के लिए राज्य सरकारों द्वारा गठित किए जाने वाले अपीलीय प्राधिकरण में अपील करने के लिए और तत्पश्चात् राज्य सरकार द्वारा पुनरीक्षण किए जाने के लिए उपबंध किए गए हैं। (धारा 25 और धारा 26)

जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 की धारा 28 के प्रयोजनों के लिए संघ राज्यक्षेत्र, चंडीगढ़ ने तारीख 11.4.88 को अपीलीय प्राधिकरण के रूप में तीन अधिकारियों की नियुक्ति की थी। पांडिचेरी सरकार ने तारीख 5.4.88 को मुख्य सचिव को अपीलीय प्राधिकारी के रूप में नियुक्त किया था। दिल्ली प्रशासन ने तारीख 18.2.92 को वित्तीय आयुक्त को अपीलीय प्राधिकारी नियुक्त किया।

हरियाणा (जल प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) नियम, 1978 (22.12.78) के नियम 23 में कहा गया है कि अपील प्राधिकरण, सरकार द्वारा मनोनीत किए जाने वाले दो व्यक्तियों से मिलकर गठित किया जाएगा जिन्हें इंजीनियरिंग में स्नातक की योग्यात प्राप्त होगी और एक तीसरा व्यक्ति होगा जिसे विधि में स्नातक की डिग्री प्राप्त होगी तथा जिसे अधिवक्ता के रूप में 3 वर्ष का अनुभव प्राप्त होगा।

महाराष्ट्र जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) नियम, 1983 में राज्य सरकार द्वारा पदाभिहित किए जाने वाले अपीलीय प्राधिकरण को अपील करने का उपबंध किया गया है। पंजाब जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अपीलीय नियम, 1978 में अपीलीय प्राधिकरण को अपील करने का उपबंध किया गया है। यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि इन नियमों के अधीन किसे पदाभिहित किया जाएगा।

उत्तर प्रदेश जल (मल और व्यावसायिक बहिस्राव निस्सारण के लिए सहमति) नियम, 1981, में सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट अपीलीय प्राधिकारी को अपील करने का उपबंध किया गया है।

केवल आन्ध्र प्रदेश में, आंध्र प्रदेश जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) नियम, 1977 के साथ पठित जल अधिनियम, 1974 की धारा 28 के अधीन अपील किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को की जा सकेगी (ए.पी. पौल्यूशन कन्ट्रोल बोर्ड बनाम प्रो॰ एम.वी. नायडू: 1999(2) एस सी सी 718, पृष्ठ 735 देखें)।

इस प्रकार, आंध्र प्रदेश के सिवाय, किसी ऐसे निकाय को अपील नहीं की जाती है जिसमें कोई न्यायिक सदस्य हो। अपीलीय प्राधिकरण की सहायता के लिए किसी विशेषज्ञ की व्यवस्था भी नहीं है।

**वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 और उसके अधीन बनाए गए नियम:**

वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 की धारा 31 में राज्य सरकार द्वारा गठित किए जाने वाले अपीलीय प्राधिकरण को अपील करने के उपबंध अंतर्विष्ट हैं।

आंध्र प्रदेश वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) नियम, 1982 के नियम 37 में राज्य बोर्ड के आदेश के विरुद्ध अपीलीय प्राधिकरण को अपील करने की बात कही गई है। गुजरात नियम, 1983 के नियम 18 में भी अपील करने का उपबंध किया गया है। इसी प्रकार, हरियाणा नियम, 1983 के नियम 24 में भी ऐसा ही उपबंध किया गया है। कर्नाटक नियम, 1983 के नियम 25 में अपील करने का प्रावधान है। केरल नियम, 1984 के नियम 34 के अधीन अपील प्राधिकरण को अपील करने का प्रावधान किया गया है। मध्य प्रदेश के नियमों के नियम 21 में अपील करने की व्यवस्था की गई है। महाराष्ट्र नियमों का नियम 32 अपील के बारे में है। तमिलनाडु नियम, 1983 के नियम 35 में अपील करने का उपबंध किया गया है। पश्चिम बंगाल नियम 1983 के नियम 17 में अपील करने का उपबंध है। संघ राज्यक्षेत्र नियम 1983 के नियम 17 में अपील करने की व्यवस्था की गई है। हमारे समक्ष एक भी ऐसा प्रमाण नहीं है जिससे यह कहा जा सके कि अपील न्यायालय में या न्यायिक अधिकारी को की जाएगी जिसे विशेषज्ञ परामर्श भी प्राप्त होगा।



**उपर्युक्त अधिनियमों और नियमों में अपीलीय उपबंधों का सारांश (न्यायिक और विशेषज्ञ आदानों का अभाव):**

यह देखा जा सकेगा कि विभिन्न विशेष विधियों में, उदाहरण के लिए, पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986, जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974, वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981, राज्य सरकारों/केन्द्रीय सरकार को अपीलीय प्राधिकरण नियुक्त करने की शक्ति प्रदान करते हैं। अपील, जैसाकि उपर्युक्त पैराओं में देखा जा सकता है, सामान्यतया सरकार के विभिन्न अधिकारियों या सरकारी विभागों में की जाती है। एक या दो मामलों के सिवाय, अपील न्यायिक अधिकारी से गठित किसी न्यायिक निकाय को नहीं की जाती है। अपीलीय प्राधिकरण को कहीं भी पर्यावरण के क्षेत्र में विशेषज्ञों की सहायता प्राप्त नहीं हैं।

पिछले अध्यायों में की गई चर्चा तथा विदेशों में स्थापित किए गए पर्यावरण न्यायालयों को ध्यान में रखते हुए, विधि आयोग का यह मत है कि जहां तक अपीलों के निपटाने का संबंध है, वर्तमान प्रणाली संतोषप्रद नहीं है। प्रदूषण से प्रभावित किसी पक्षकार के लिए या तीसरे पक्षकारों के लिए अपील राहत पाने का प्रथम अवसर है। आयोग के विचार में, ऐसी अपील विशेष अधिकारिता रखने वाले अपीलीय न्यायालय में की जानी चाहिए और ऐसा न्यायालय न्यायिक योग्यताएं रखने वाले व्यक्तियों या अधिवक्ता के रूप में पर्याप्त अनुभव रखने वाले व्यक्तियों को मिलाकर गठित किया जाना चाहिए। जैसाकि पिछले अध्यायों में कहा गया है कि बहुत से देशों में इस बात को मान्यता दी गई है कि अपील ऐसे न्यायालय में की जानी चाहिए जिसके सदस्यों को न्यायिक ज्ञान और अनुभव प्राप्त हो और जिसे पर्यावरण विज्ञान के विभिन्न पहलुओं में विशेषज्ञों की सहायता प्राप्त हो।

## अध्याय – छः

## दो अन्य पर्यावरण अधिकरण और उनमें व्याप्त दोष

### राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995

संसद द्वारा यह अधिनियम, जैसाकि प्रस्तावना में बताया गया है, किसी परिसंकटमय पदार्थ के हथालने के समय होने वाली किसी दुर्घटना से उद्भूत नुकसानी के लिए सुनिश्चित दायित्व का उपबंध करने और व्यक्ति, सम्पत्ति और पर्यावरण को हुई नुकसानी के लिए राहत और प्रतिकर देने की दृष्टि से, ऐसी दुर्घटना से उद्भूत मामलों के प्रभावी और शीघ्र निपटारे के लिए राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण की स्थापना करने का और उससे संबंधित या उसके अनुषांगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियमित किया गया था। धारा 3 के अधीन दायित्व 'दोष न होने' के आधार पर होगा और धारा 4 के अधीन प्रतिकर संदेय होगा। धारा 9(1) के अधीन अधिकरण एक अध्यक्ष और उतने उपाध्यक्षों, न्यायिक सदस्यों तथा तकनीकी सदस्यों से मिलकर बनेगा जितने केन्द्रीय सरकार ठीक समझे। इसकी बैठकें न्यायपीठों के रूप में हो सकेंगी परन्तु प्रत्येक न्यायपीठ में एक न्यायिक सदस्य और एक तकनीकी सदस्य अवश्य होगा। कोई व्यक्ति अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति के लिए तभी अर्हित होगा जब वह उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश है या रहा है या कम से कम दो वर्ष तक उपाध्यक्ष का पद धारण कर चुका है। उपाध्यक्ष के रूप में नियुक्ति के लिए वही व्यक्ति अर्हित होगा जो, (क) उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश है या रहा है; या (ख) कम से कम दो वर्ष तक भारत सरकार के सचिव के पद पर पदासीन रहा है अथवा केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन ऐसा कोई अन्य पद धारण कर चुका है जिसका वेतनमान भारत सरकार के सचिव के वेतनमान से कम नही है; या (ग) कम से कम पांच वर्ष तक भारत सरकार के अपर सचिव का पद धारण कर चुका है और जिसने पर्यावरण से संबंधित समस्याओं के विधिक, प्रशासनिक, वैज्ञानिक या तकनीकी पहलुओं का पर्याप्त ज्ञान और अनुभव प्राप्त कर लिया है या जिसे न्यायिक या तकनीकी सदस्य के रूप में कम से कम तीन वर्ष का अनुभव है। न्यायिक सदस्य ऐसा व्यक्ति हो सकेगा जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश होने के लिए अर्हित है या रहा है या भारतीय विधि सेवा का सदस्य रहा है और उस सेवा के ग्रेड – 1 में कोई पद कम से कम तीन वर्ष तक धारण कर चुका है। तकनीकी सदस्य ऐसा व्यक्ति हो सकेगा जिसे पर्यावरण से संबंधित समस्याओं के प्रशासनिक, वैज्ञानिक या तकनीकी पहलुओं का पर्याप्त ज्ञान या अनुभव है अथवा उसके संबंध में कार्रवाई करने की क्षमता है। अध्यक्ष या उपाध्यक्ष के पद पर किसी व्यक्ति की नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श के बिना नहीं की जा सकेगी। न्यायिक सदस्य या तकनीकी सदस्य के रूप में किसी व्यक्ति की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा निम्नलिखित से मिलकर बनी चयन समिति की सिफारिश पर ही की जाएगी, अन्यथा नहीं, अर्थात्:

(क) अधिकरण का अध्यक्ष

(ख) भारत सरकार के पर्यावरण और वन मंत्रालय का सचिव

(ग) भारत सरकार के विधि, न्याय और कंपनी कार्य मंत्रालय का सचिव

(घ) महानिदेशक, वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद

(ङ) केन्द्रीय सरकार द्वारा नामनिर्देशित एक पर्यावरणविद।

अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा अन्य सदस्यों का कार्यकाल पांच वर्ष होगा। विधि के प्रश्नों पर अपील उच्चतम न्यायालय में की जाएगी।

राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण के संबंध में यह कहा जा सकता है कि क्योंकि अधिनियम अधिसूचित नहीं किया गया है, इसलिए विगत आठ वर्षों में अधिकरण का गठन नहीं हो पाया है। तथ्य यह कि इस अधिकरण के लिए आठ वर्षों में न तो कोई अध्यक्ष ही नियुक्त किया गया है और न ही उपाध्यक्ष, न्यायिक सदस्य और तकनीकी सदस्य। संसद द्वारा जिस महत्वपूर्ण पर्यावरण अधिकरण के गठन की धारणा की गई थी, दुर्भाग्यवश उसका अस्तित्व सामने नहीं आ सका है। वास्तव में, भोपाल जैसी दुर्घटना हुई है परन्तु अभी ऐसा कोई अधिकरण नहीं है जो शीघ्र ही क्षतिपूर्ति का संदाय करने की स्वीकृति प्रदान कर सके।





उक्त अधिकरण की शक्तियों से संबंधित कुछ अन्य पहलु भी हैं। यह केवल प्रतिकर का संदाय करने का निर्णय देगा। इस अधिकरण को वे सभी शक्तियां दी जानी चाहिए जो एक सिविल न्यायालय को प्राप्त हैं–ताकि यह घोषणाएं कर सके, स्थायी और आज्ञापक व्यादेश दे सके और कब्जे आदि के बारे में आदेश दे सके। निःसंदेह अधिकरण की न्यायपीठों के रूप में बैठकों के लिए उपबंध है परन्तु योजना में प्रत्येक राज्य के लिए न्यायालय की परिकल्पना नहीं की गई हैं। इसके अतिरिक्त, न्यायिक सदस्यों के अतिरिक्त अन्य सदस्य पर्यावरण संबंधी विषयों में सदैव या आवश्यक रूप से विशेषज्ञ नहीं होते हैं। उदाहरण के लिए, धारा 10(2)(ख) के अधीन सरकार में सचिव के पद का कोई व्यक्ति यदि उपाध्यक्ष नियुक्त हो जाता है जो उसे पर्यावरण संबंधी विषयों में अनुभव प्राप्त होने की आवश्यकता नहीं है। यह बात स्पष्ट नहीं हैं कि धारा 10(2)(ग) के अधीन उपध्यक्ष के पद पर अपर सचिव की नियुक्ति के मामले में ही पर्यावरण संबंधी विषयों के अनुभव प्राप्त होने की शर्त क्यों रखी गई है। इसी प्रकार, धारा 10(3)(ख) में यह नहीं कहा गया है कि भारतीय विधि सेवा का कोई सदस्य, जो न्यायिक सदस्य नियुक्त किया जा सकेगा, ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसने पर्यावरण के क्षेत्र में कोई कार्य किया हो। साथ ही, जहां तक धारा 10(4) के अधीन तकनीकी सदस्यों की नियुक्ति का संबंध है, ये ऐसे व्यक्ति होंगे जिन्हें पर्यावरण से संबंधित समस्याओं के किसी अनुभव के बिना, प्रशासनिक और वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त होगा।

यदि दूसरे देशों की पद्धति पर दृष्टिपात किया जाए, जैसाकि अध्याय-चार में बताया गया है, वहां पर्यावरण न्यायालय न्यायिक सदस्यों तथा पर्यावरणविदों से मिलकर गठित होता है। इसका कारण यह है कि यदि उन्हें सिविल न्यायालय का (जैसाकि अब प्रस्तावित है) या मूल अधिकारिता और अपीलीय अधिकारिता वाले न्यायालय का कोई सामान्य न्यायिक कार्य करना है तो पर्याप्त अनुभव प्राप्त न्यायिक अधिकारियों / बार के सदस्यों के अतिरिक्त, प्रशासनिक अधिकारियों या लोक सेवकों की नियुक्ति की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती है। अतः आयोग का विचार कि पर्यावरण न्यायालय में उच्च न्यायालय में न्यायिक अनुभव प्राप्त व्यक्ति या बार के सदस्य, जिनकी कार्य अवधि 20 वर्ष हो चुकी है, और उनकी सहायता के लिए पर्यावरणविद होने चाहिएं।

### राष्ट्रीय पर्यावरण अपील प्राधिकरण अधिनियम, 1997

जैसाकि प्रस्तावना में बताया गया है, इस अधिनियम का आशय ऐसे क्षेत्रों के निर्बन्धन की बाबत, जिनमें पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के सुरक्षोपायों के अधीन कोई उद्योग, संक्रियाएं या प्रसंस्करण (या किसी वर्ग के उद्योग, संक्रियाएं या प्रसंस्करण) चलाए जाएंगे या नहीं चलाए जाएंगे, अपीलों की सुनवाई करने के लिए राष्ट्रीय पर्यावरण अपील प्राधिकरण की स्थापना करना था।

अधिनियम की धारा 4 के अधीन, अपील प्राधिकरण एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष और तीन से अनधिक ऐसे सदस्यों से मिलकर बनेगा जो केन्द्रीय सरकार ठीक समझे। धारा 5 के अधीन कोई व्यक्ति अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति के लिए तभी अर्हित होगा जब वह –

(क) उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश रहा है;

(ख) उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश रहा है।

कोई व्यक्ति उपाध्यक्ष तभी नियुक्त किया जा सकेगा जब कि (क) वह कम से कम दो वर्ष तक भारत सरकार के सचिव के पद पर रहा हो अथवा राज्य सरकार के अधीन ऐसा कोई अन्य पद धारण कर चुका है जिसका वेतनमान भारत सरकार के सचिव के वेतनमान से कम नहीं है; और (ख) उसे पर्यावरण से संबंधित प्रबंध विधि या आयोजना तथा विकास से संबंधित समस्याओं के प्रशासनिक, विधिक, प्रबंधकीय या तकनीकी क्षेत्रों में विशेषज्ञता या अनुभव प्राप्त हो।

यह देखा जा सकता है कि उपर्युक्त उपबंध और राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995 के अधीन किए गए उपबंधों के बीच अंतर है। परंतु यहां भी, सरकार के सचिव के पद पर रहे व्यक्ति को उपाध्यक्ष के रूप में नियुक्ति के लिए पर्यावरण संबंधी विषयों का अनुभव प्राप्त होना आवश्यक नहीं है।

कार्यकाल तीन वर्ष है।

यह तथ्य सामने आया है कि जारी की गई अधिसूचना के अनुसार अपील प्राधिकरण की संकीर्ण अधिकारिता की दृष्टि से उसके पास अधिक कार्य नहीं था। इसने बहुत थोड़े से मामलों में कार्यवाही की। पहले अध्यक्ष का कार्यकाल समाप्त हो जाने पर उसके स्थान पर कोई नियुक्ति नहीं की गई है।

इस प्रकार, ये दो राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण आज दुर्भाग्यवश कार्यशील नहीं हैं। एक की अधिकारिता में प्रतिकर का निर्णय करना था और यह वास्तव में कभी अस्तित्व में ही नहीं आया। दूसरा अस्तित्व में आया परन्तु पहले अध्यक्ष का कार्यकाल पूरा हो जाने के पश्चात उसके स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को अध्यक्ष के पद पर नियुक्त नहीं किया गया।

पर्यावरण अधिकरणों के संबंध में संसद द्वारा बनाई गई विधियों के ऐसे अनुभव की पृष्ठभूमि में, हमने अध्याय-नौ में पर्यावरण न्यायालय के गठन के लिए उपयुक्त प्रस्ताव किए हैं। ये न्यायालय सिविल न्यायालयों के रूप में अपनी मूल अधिकारिता के साथ-साथ अपीलीय शक्तियों का प्रयोग भी कर सकेंगे जैसाकि सिविल न्यायालयों द्वारा किया जाता हैं। ये प्रस्ताव अध्याय-नौ में अन्तर्विष्ट किए गए हैं।

## अध्याय-सात

**क्या संसद द्वारा अनुच्छेद 252 के अधीन बनाई गई विधि [जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 जैसी] अनुच्छेद 253 के अधीन विधि बनाकर संशोधित की जा सकती है? अनुच्छेद 247 का प्रयोजन क्या है?**

जब हम 'पर्यावरण न्यायालय' के लिए संसद द्वारा केन्द्रीय अधिनियम पर विचार करते हैं तब भारत के संविधान के अनुच्छेद 252 और 253 के बारे में एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है। जैसाकि नीचे स्पष्ट किया गया है, उक्त अनुच्छेद संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 2 (राज्य सूची) के अधीन आने वाले विषयों के संबंध में, जिनके बारे में राज्य विधानमंडलों को विधान बनाने की शक्ति प्राप्त है, संसद को विधि बनाने की शक्ति प्रदान करते हैं।

हम प्रारम्भ में अनुच्छेद 252, दो या अधिक राज्यों के लिए उनकी सहमति से विधि बनाने की संसद की शक्ति और ऐसी विधि के किसी अन्य राज्य द्वारा अंगीकार किए जाने के बारे में है। इसका पाठ निम्नलिखित है:

'अनुच्छेद 252 : (1) यदि किन्हीं दो या अधिक राज्यों के विधानमंडलों को यह वांछनीय प्रतीत होता है कि उन विषयों में से, जिनके संबंध में संसद को अनुच्छेद 249 और अनुच्छेद 250 में यथा उपबंधित के सिवाय राज्यों के लिए विधि बनाने की शक्ति नहीं है, किसी विषय का विनियमन ऐसे राज्यों में संसद विधि द्वारा करे और यदि उन राज्यों के विधानमंडलों के सभी सदन उस आशय के संकल्प पारित करते हैं तो उस विषय का तदनुसार विनियमन करने के लिए कोई अधिनियम पारित करना संसद के लिए विधिपूर्ण होगा और इस प्रकार पारित अधिनियम ऐसे राज्यों को लागू होगा और ऐसे अन्य राज्य को लागू होगा, जो तत्पश्चात् अपने विधानमंडल के सदन द्वारा या जहां दो सदन हैं वहां दोनों सदनों में से प्रत्येक सदन इस निमित्त पारित संकल्प द्वारा उसको अंगीकार कर लेता है।

(2) संसद द्वारा इस प्रकार पारित किसी अधिनियम का संशोधन या निरसन इसी रीति से पारित या अंगीकृत संसद के अधिनियम द्वारा किया जा सकेगा, किन्तु उसका उस राज्य के संबंध में संशोधन या निरसन जिसको वह लागू होती है, उस राज्य के विधानमंडल के अधिनियम द्वारा नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 253 में एक सर्वोपरि खंड अन्तर्विष्ट है। इसका पाठ निम्नलिखित है:

''अनुच्छेद 253: अन्तर्राष्ट्रीय करारों को प्रभावी करने के लिए विधान:

इस अध्याय के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, संसद को किसी अन्य देश या देशों के साथ की गई किसी संधि, करार या अभिसमय अथवा किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन, संगम या अन्य निकाय में किए गए किसी विनिश्चय के कार्यान्वयन के लिए भारत के सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र या उसके किसी भी भाग के लिए कोई विधि बनाने की शक्ति है।''

अनुसूची - सात की सूची - I की प्रविष्टि 13 का पाठ निम्नलिखित है:

''अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, संगमों या अन्य निकायों में भाग लेना और उनमें किए गए विनिश्चयों का कार्यान्वयन।''

उपर्युक्त प्रविष्टि, संसद को इस प्रविष्टि के अधीन विधि बनाने की शक्ति प्रदान करती है चाहे ये विषय राज्य विधानमंडलों के अधिकारक्षेत्र में ही आते हों। अनुच्छेद 253 इस संबंध में संसद को अध्यारोही शक्ति प्रदान करता है। एस. जगन्नाथ बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया: 1997(2) एस सी सी 87 मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया था कि अनुच्छेद 253, अनुच्छेद 51(ग) में घोषित प्रयोजन (अन्तर्राष्ट्रीय विधि और संधि बाध्यताओं के प्रति आदर बढ़ाने), संधि करना और संधियों को प्रभावी बनाना आदि, के अनुरूप है और यह सूची

- I की प्रविष्टि 14 के अधीन संघीय विधान का विषय है। अनुच्छेद 253 (संधि तथा करार और अधिनियम करना) में 'पूर्वगामी उपबंधों के होते हुए भी' शब्दों के प्रयोग द्वारा, सूची 2 की प्रविष्टियों के बारे में भी, जहां तक भारत की संधि बाध्यताओं को प्रभावी बनाने के प्रयोजन के लिए आवश्यक है, संसद को विधि बनाने की शक्ति प्रदान की गई है। इस प्रकार, अन्तर्राष्ट्रीय करारों को कार्यान्वित करने के विषय में अनुच्छेद 253 के साथ पठित अनुसूची-सात की सूची-I की प्रविष्टि 13 (अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों आदि में भाग लेना) के अधीन बनाए गए अधिनियमों का राज्य की किसी असंगत विधि पर अध्यारोही प्रभाव होगा।

अब आगे हम अनुसूची-सात की सूची-I (संघ सूची), सूची-II (राज्य सूची) और सूची-III (समवर्ती सूची) का निदेश करेंगे जिनमें, जहां तक कतिपय पर्यावरण संबंधी विषयों का संबंध है, संसद और राज्यों की विधायी शक्तियों की सूची दी गई है।

**सूची-I (संघ सूची):** परमाणु ऊर्जा और खनिज सम्पत्ति स्रोत (प्रविष्टि 6); रक्षा प्रयोजनों के लिए आवश्यक घोषित किए उद्योग (प्रविष्टि 7); पोतपरिवहन और नौवहन (प्रविष्टि 24); समुद्री पोतपरिवहन और नौवहन (प्रविष्टि 25); राष्ट्रीय हित में समीचीन उद्योग (प्रविष्टि 52); तेल क्षेत्रों और खनिजों का विनियमन तथा विकास (प्रविष्टि 54); अन्तरराज्यिक नदियों और नदी दूनों का विनियमन और विकास (प्रविष्टि 56); मछली पकड़ना और मीन क्षेत्र (प्रविष्टि 57)।

**सूची-II (राज्य सूची):** लोक स्वास्थ्य और स्वच्छता (प्रविष्टि 6); कृषि (प्रविष्टि 14); पशुधन का परिरक्षण, संरक्षण और सुधार (प्रविष्टि 15); जल जलप्रदाय, सिंचाई, नहरें, जल निकास और तटबंध (प्रविष्टि 17); मत्स्यिकी (प्रविष्टि 21); खानों का विनिमयन खनिजों का विकास; (संघ नियंत्रण के अधीन विनियमन और विकास के संबंध में सूची-I के उपबंधों के अधीन रहते हुए) (प्रविष्टि 24)।

**सूची-III (समवर्ती सूची):** पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण (प्रविष्टि 17); वन (प्रविष्टि 17क); वन्य जीवजन्तुओं और पक्षियों का संरक्षण।

''पर्यावरण संरक्षण सुनिश्चित करने के लिए विधायी उपायों और प्रशासनिक तंत्र की सिफारिश करने के लिए'' सरकार द्वारा नियुक्त की गई तिवारी समिति (1980) (विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली) ने सिफारिश की थी कि सूची-III में 'पर्यावरण संरक्षण' नामक एक नई प्रविष्टि की जानी चाहिए ताकि केन्द्र और राज्य सरकार दोनों ही पर्यावरण संबंधी विषयों पर विधि बना सकें। अभी तक यह कार्य नहीं किया गया है।

परन्तु इस विषय में कोई संदेह नहीं है कि अनुच्छेद 252 और 253 जैसे विभिन्न अनुच्छेदों के अधीन, संसद को सातवीं अनुसूची की राज्य सूची (सूची-II) के विषयों पर, कतिपय परिस्थितियों में, केन्द्रीय विधान पारित करने की शक्ति प्राप्त है।

जहां तक वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981, पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 में संशोधन करके अनुच्छेद 253 के अधीन संसद द्वारा बनाई गई विधि द्वारा प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालय जैसा अपीलीय न्यायालय स्थापित करने का संबंध है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है क्योंकि ये दोनों ही विधियां भी इसी अनुच्छेद 253 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए संसद द्वारा ही बनाई गई हैं। प्रश्न केवल जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 के बारे में उठता है जो अनुच्छेद 252(1) के अधीन, न कि अनुच्छेद 253 के अधीन, अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए संसद द्वारा बनाया गया था। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या इस अधिनियम में संशोधन राज्य विधानमंडलों द्वारा संकल्प पारित करने की प्रक्रिया का अनुपालन करके ही किया जा सकता है या क्या, ऐसा प्रक्रिया का अनुसरण किए बिना ही, जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 में संशोधन संसद द्वारा जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 के अधीन प्रस्तावित न्यायालय को अपीलीय अधिकारिता उपलब्ध कराने के प्रयोजन से, अनुच्छेद 253 के अधीन संशोधनकारी विधि पारित करके किया जा सकेगा?

**जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974:** यह अधिनियम कतिपय राज्यों द्वारा जल आदि विषयों पर, जो सूची-II (राज्य सूची) में दिए गए हैं, एकरूपता लाने के प्रयोजन से कतिपय राज्यों द्वारा अनुच्छेद 252(1) के अधीन संसद द्वारा अधिनियम बनाए जाने की इच्छा व्यक्त किए जाने के पश्चात अधिनियमित किया गया था। उन राज्यों के विधानमंडलों ने इस प्रयोजन से संकल्प पारित किए थे। संसद द्वारा विधियां बनाए जाने के पश्चात् कतिपय अन्य राज्यों ने भी जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 को अंगीकार



कर लिया था। अनुच्छेद 252(2) की दृष्टि से, यदि संसद द्वारा सूची-II के किसी विषय पर अनुच्छेद 252(1) के अधीन ऐसी विधि बनाई जाती है तो उस विधि में संशोधन करने के लिए भी अनुच्छेद 252(1) की प्रक्रिया का, राज्यों द्वारा संकल्प पारित करके, अनुसरण किया जाना आवश्यक है। अनुच्छेद 252 के खंड (2) में ऐसी प्रक्रिया का अनुसरण किए जाने की अपेक्षा की गई है।

परन्तु वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 संसद द्वारा अनुच्छेद 252 के अधीन नहीं अनुच्छेद 253 के अधीन बनाया गया था जो संसद को सूची-II के विषयों पर अधिनियम बनाने की शक्ति प्रदान करता है यदि उसका प्रयोजन किसी देश या देशों के साथ 'किसी संधि, करार या अभिसमय को या किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन समागम या अन्य निकाय में लिए गए किसी निर्णय को कार्यान्वित करना है।'

वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 की प्रस्तावना में स्पष्ट रूप से 'संयुक्त राष्ट्र के मानवीय पर्यावरण सम्मेलन में किए गए विनिश्चयों का,' जो जून, 1972 में स्टाकहोम में हुआ था और उसमें भारत ने भाग लिया था, निर्देश किया गया था, और विनिश्चय यह था कि देशों को भूमि के राष्ट्रीय सम्पत्ति स्रातों के परिरक्षण के लिए, जिनमें अन्य के साथ-साथ वायु की गुणवत्ता का परिरक्षण और वायु प्रदूषण पर नियंत्रण रखना सम्मिलित है, समुचित कदम उठाने चाहिए। इस प्रकार संसद ने वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 पारित करने के लिए अनुच्छेद 252 के बजाय अनुच्छेद 253 का आश्रय लिया। इस अधिनियम में संशोधन अनुच्छेद 252 के अधीन संसद द्वारा दूसरी विधि बनाकर किया जा सकता है।

पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 भी संसद द्वारा अनुच्छेद 253 के अधीन बनाया गया था और इसकी प्रस्तावना में मानवीय पर्यावरण के परिरक्षण और सुधार विषय पर स्टाकहोम जून, 1972 में हुए संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में किए गए विनिश्चयों का निर्देश किया गया है। प्रस्तावना में कहा गया है कि 'यह आवश्यक समझा गया है कि पूर्वोक्त निर्णयों का, जहां तक उनका संबंध पर्यावरण संरक्षण और सुधार से तथा मानव, जीवित प्राणियों, पादपों और संपत्ति को होने वाले परिसंकट के निवारण से है, लागू किया जाए। इसलिए, उपर्युक्त अधिनियम भी, संसद द्वारा अनुच्छेद 253 के अधीन ही अन्य विधि बनाकर संशोधित किया जा सकता है।

राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995 की प्रस्तावना में भी पर्यावरण और विकास संबंधी संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में, जो रियो डि जेनरो में जून, 1992 में हुआ था और जिसमें भारत ने भाग लिया था, राज्यों से यह अपेक्षा करते हुए इस विनिश्चय का निर्देश किया गया है कि प्रदूषण और अन्य पर्यावरण संबंधी नुकसान से आहत व्यक्तियों के लिए दायित्व और प्रतिकर के बारे में राष्ट्रीय विधियां विकसित की जाएं। प्रस्तावना में यह भी कहा गया है कि यह समीचीन समझा गया है कि पूर्वोक्त सम्मेलन के विनिश्चयों को, जहां तक उनका संबंध पर्यावरण के संरक्षण और परिसंकटमय पदार्थों के हथालने के समय व्यक्तियों, सम्पत्ति और पर्यावरण को होने वाले नुकसान के लिए प्रतिकर का संदाय करने से है, कार्यान्वित किया जाए।'' इसलिए, यह अधिनियम संसद द्वारा बनाई गई अन्य विधि द्वारा ही, यदि यह अनुच्छेद 253 क अधीन बनाई गई है, संशोधित या निरसित किया जा सकेगा।

**राष्ट्रीय पर्यावरण अपील प्राधिकरण अधिनियम, 1997** यह अधिनियम, ऐसे क्षेत्रों के निर्बन्धन की बाबत, जिनमें 'पर्यावरण(संरक्षण) अधिनियम, 1986 के अधीन कोई उद्योग, संक्रियाएं या प्रसंस्करण या किसी वर्ग के उद्योग, संक्रियाएं या प्रसंस्करण नहीं चलाए जाएंगे या कुछ रक्षोपायों के अधीन रहते हुए चलाए जाएंगे'' अपीलों की सुनवाई करने के लिए राष्ट्रीय पर्यावरण अपील अधिकरण की स्थापना करने के लिए और उससे संबंधित या उसके अनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियमित किया गया है। इस अधिनियम का संबंध 1986 के अधिनियम से है इसलिए, संसद द्वारा अनुच्छेद 253 के अधीन बनाए जाने वाले किसी अधिनियम द्वारा इसका संशोधन करने या इसे निरसित करने में कोई कठिनाई नहीं है।

इस प्रकार, जहां तक अपीलीय शक्तियां प्रदान करते हुए पर्यावरण न्यायालय गठित करने का संबंध है, वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 (जो 1972 में स्टाकहोम में हुए सम्मेलन के विनिश्चयों को कार्यान्वित करने के लिए अधिनियमित किया गया था) या पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 (जो 1972 के सम्मेलन के उन्हीं प्रयोजनों के लिए बनाया गया था) में संशोधन करने में कोई कठिनाई नहीं है। ये दोनों अधिनियम अनुच्छेद 253 का निर्देश करते हैं और तीनों अधिनियमितियों में अर्थात्, वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981, पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 और राष्ट्रीय पर्यावरण अपील प्राधिकरण अधिनियम, 1997 के उपबंधों में, अनुच्छेद 253 के अधीन, संशोधन करके या उन्हें निरसित करके संसद द्वारा अनुच्छेद 253

के अधीन प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालय को अपीलीय शक्तियां प्रदान करने के लिए नई विधि बनाई जा सकती है। इसी प्रकार, राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995 को भी अनुच्छेद 253 के अधीन संशोधित या निरसित किया जा सकता है।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है, प्रश्न केवल जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनिम, 1974 के बारे उठते हैं और जो अनुच्छेद 252 के अधीन पारित किया गया था। क्या अनुच्छेद 252 के खंड (2) की दृष्टि से, इस अधिनियम की धारा 28 को निकालने के लिए, जो राज्य सरकार को अपीलीय शक्तियां देने की शक्ति प्रदान करती है और अपीलीय शक्तियां पर्यावरण न्यायालय को हस्तांतरित करने के लिए, राज्य विधानमंडलों द्वारा संकल्प पारित किए जाने की आवश्यकता होगी जैसीकि इस खंड में परिकल्पना की गई है। इस समय यह इसलिए आवश्यक हो गया है कि राज्य ने (आन्ध्र प्रदेश के सिवाय) नौकरशाहों को लेकर प्राधिकरण गठित किए हैं।

तथापि, इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन नहीं है।

हम पहले अनुच्छेद 253 के क्षेत्र को स्पष्ट करेंगे। संसद अनुच्छेद 253 के अधीन शक्तियों का प्रयोग वहां करना चाहती है जहां वह अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में, जिनमें भारत ने भाग लिया है, किए गए करारों, संधियों या विनिश्चियों को कार्यान्वित करना आवश्यक समझती है। संसद की यह शक्ति स्वतंत्र है और अनुच्छेद 252 से नियंत्रित नहीं है। इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 253 "इस अध्याय के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी" शब्दों से आरम्भ होता है। यह सर्वोपरि खंड विषय के संदेहों को दूर कर देता है और यह न केवल संसद द्वारा अनुच्छेद 253 के अधीन विषय पर प्रथम विधि बनाए जाने के लिए, (उदाहरण के लिए वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981) जब संसद द्वारा पहले उस विषय पर अनुच्छेद 252 के या अनुच्छेद 253 से पहले के (अर्थात् अनुच्छेद 245 से 252 तक) किसी उपबंध के अधीन कोई विधि न बनाई गई हो, लागू होता है अपितु वहां भी लागू होता है जहां संसद अनुच्छेद 253 के अधीन अपनी विशेष शक्तियों का प्रयोग करना चाहती है चाहे उस विषय पर उसने राज्य विधानमंडल के संकल्पों के आधार पर अनुच्छेद 252 के अधीन कोई विधि भी बनाई गई है। दूसरे शब्दों में, जहां अनुच्छेद 252 के अधीन राज्यों की इच्छा के अनुसरण में जिन्होंने संकल्प पारित किए हैं (उदाहरण के लिए जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974), संसद ने अनुच्छेद 252 के अधीन कोई अधिनियम बनाया है, तब भी, यदि संसद 'अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में, जिनमें भारत ने भाग लिया है, किए गए करारों, संधियों या विनिश्चयों को कार्यान्वित करने के लिए', इस विधि में संशोधन करने या उसे निरसित करने की आवश्यकता महसूस करती है, आयोग के विचार में, संसद द्वारा अनुच्छेद 252 के अधीन सूची-II के विषय पर बनाई गई किसी पूर्वकालिक ऐसी विधि में संशोधन करने या उसे निरसित करने के प्रयोजन से कोई संशोधनकारी या निरसनकारी विधि (अनुच्छेद 253 के अधीन) पारित करने के लिए संसद द्वारा अनुच्छेद 253 के अधीन विशेष शक्तियों का प्रयोग किया जाना स्पष्ट रूप से अनुज्ञेय है। अनुच्छेद 253 के अधीन संसद की शक्ति स्वतंत्र है और यह पहली बार बनाई जाने वाली किसी विधि तक सीमित नहीं है अपितु यह अनुच्छेद 252 के अधीन संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि में संशोधन या उपांतरण करने के लिए भी लागू होती है। अनुच्छेद 253 के अधीन संसद की शक्ति को अनुच्छेद 253 के प्रारम्भिक भाग द्वारा स्पष्ट रूप से और सुरक्षित किया गया है। 'इस अध्याय के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी' शब्द से आरम्भ होने वाले खंड "अध्याय के पूर्वगामी उपबंध" जैसे शब्द अनुच्छेद 253 को अध्याय के अनुच्छेद 245 से 251 तक तथा इसी अध्याय में अनुच्छेद 253 से पूर्व आने वाले अनुच्छेद 252 के खंड (1) या (2) के अध्यारोहण अनुज्ञा देते हैं।

जब अनुच्छेद 253 इस प्रकार से अनुच्छेद 252 के खंड (2) का अध्यारोहण करता है तब यह कहने में कोई कठिनाई नहीं है कि यद्यपि जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम 1974 संसद द्वारा स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 252 के अधीन सूची-II के विषय पर (राज्य विधान-मंडलों द्वारा संकल्प पारित किए जाने के पश्चात) बनाया गया था, संसद द्वारा बनाया गया उक्त अधिनियम, 'पर्यावरण संरक्षण' के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में किए गए विनिश्चय को कार्यान्वित करने के प्रयोजन से अनुच्छेद 252 के खंड (2) में विनिर्दिष्ट प्रक्रिया का अनुसरण किए बिना भी अनुच्छेद 253 के अधीन संशोधित या उपांतरित या निरसित किया जा सकेगा। केवल इतना आवश्यक है कि संसद को ऐसे संशोधनकारी या निरसनकारी अधिनियम पारित करते समय, जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 का संशोधन करने के लिए, संसद को अधिनियम की प्रस्तावना में यह निर्देश करना होगा कि संसद अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में किए गए अन्तर्राष्ट्रीय करारों, संधियों या विनिश्चयों को प्रभावी बनाने के लिए संशोधनकारी विधि पारित कर रही है। वर्तमान संदर्भ में, ऐसे सम्मेलन है-1972 में स्टॉकहोम में हुआ सम्मेलन तथा 1992 में रियो डी जेनेरों में हुआ सम्मेलन।



यहां हमें जल प्रदूषण (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 से संबंधित एक अन्य पहलु का निर्देश करना है। उक्त अधिनियम संसद द्वारा असम, बिहार, गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, राजस्थान, त्रिपुरा और पश्चिमी बंगाल राज्यों के विधानमंडलों द्वारा पारित किए गए संकल्पों के अनुसरण में बनाया गया था। इस अधिनियम को अनुच्छेद 252 के अधीन सिक्किम (1989), मेघालय (1977), महाराष्ट्र (1989) और मणिपुर (1988) ने अंगीकार कर लिया था।

ऐसा प्रतीत होता है कि जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974, कुछ राज्यों ने अभी तक अंगीकार नहीं किया है।

हमें यह भी ज्ञात है कि संसद द्वारा जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 में अनुच्छेद 252 (2) की प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए अधिनियम 53/78 द्वारा किए गए कतिपय संशोधन ऐसे कुछ राज्यों में अभी तक प्रभावी नहीं हुए हैं जिन्होंने मूल अधिनियम पारित करने के लिए संकल्प पारित किए थे या जिन्होंने बाद में इस अधिनियम को अंगीकार किया था क्योंकि उनमें से कुछ राज्यों ने संशोधनकारी अधिनियम अंगीकार करने के लिए अभी तक संकल्प पारित नहीं किए हैं। ऐसी स्थिति इसलिए पैदा हुई है कि 1978 का संशोधनकारी अधिनियम संसद द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में किए गए करारों, संधियों या विनिश्चयों को प्रभावी बनाने के लिए विशिष्ट रूप से अनुच्छेद 253 के अधीन पारित नहीं किया गया था। यदि संसद ने 1978 की संशोधनकारी विधि को अनुच्छेद 253 के अधीन पारित किया होता तो राज्यों को अपने विधानमंडलों से संकल्प पारित कराने की आवश्यकता न होती या जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 के संशोधनकारी अधिनियम, 1978 को अंगीकार करने की आवश्यकता नहीं होती। क्योंकि विचार यह है कि यदि पर्यावरण से संबंधिति अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में कोई विनिश्चय किए जाते हैं तो उन्हें कार्यान्वित करने के लिए सभी राज्यों के लिए एक समान विधि बनाई जाए।

यहां निम्नलिखित दो प्रस्तावों पर विचार किया जा सकता है:

(1) पहला यह कि प्रस्तावित अधिनियम में पर्यावरण न्यायालय को अपील करने का उपबंध करके जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 की धारा 28 प्रतिस्थापित की जाए। उक्त संशोधन, तत्पश्चात्, मूल अधिनियम में समाविष्ट कर लिया जाएगा और धारा 28 उन सभी राज्यों में प्रतिस्थापित हो जाएगी जिनमें जल अधिनियम मूल संकल्प के कारण से या बाद में उसे अंगीकार किए जाने के कारण से, प्रवर्तन में है। परन्तु, उन राज्यों में जहां जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 अभी तक प्रभावी नहीं हुआ है, उनके लिए प्रस्तावित अधिनियम में ऐसा उपबंध करना संभव हैं कि पर्यावरण न्यायालय को अपील करने का अधिकार देने वाली प्रस्तावित धारा 28 ही लागू होगी जब कभी उन राज्यों में जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 अंगीकार किया जाएगा; या

(2) इसके बजाय, हम ऐसा उपबंध भी कर सकते हैं कि जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 में किसी बात के होते हुए भी, जल अधिनियम की धारा 25 और 26 के अधीन प्रदूषण बोर्ड द्वारा पारित किसी आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, पर्यावरण न्यायालय में अपील कर सकेगा। ऐसा उपबंध जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 के लिए लागू होगा जहां, इस समय यह अधिनियम प्रवर्तन में है या जहां इसे बाद में अंगीकार किया जाएगा।

हमारे विचार में, दूसरा प्रस्ताव अधिमानी है क्योंकि यह अनुच्छेद 253 का निर्देश करेगा और अनुच्छेद 252 के अधीन पारित किए गए अधिनियम पर इसका अध्यारोही प्रभाव होगा, उन राज्यों में भी, जिन्होंने अभी तक इस अधिनियम को अंगीकार नहीं किया है और वे मूल अधिनियम, 1974 को, या 1978 में संशोधित किए गए अधिनियम को या किसी अन्य रूप में, अंगीकार करना चाहेंगे।

अपने निष्कर्षों का सारांश में उल्लेख करते हुए हम यह कहना चाहेंगे कि वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 और पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 संसद द्वारा स्टॉकहोम सम्मेलन, 1972 के विनिश्चयों को प्रभावी बनाने के लिए बनाए गए थे (अर्थात अनुच्छेद 253 के अधीन) और राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995 संसद द्वारा रियो डी जेनेरो सम्मेलन, 1992 का निर्देश करते हुए बनाया गया था तथा राष्ट्रीय पर्यावरण अपील प्राधिकरण अधिनियम, 1997, पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के अधीन सुरक्षोपायों को लागू करने के लिए विशिष्ट रूप से बनाया गया था। इसलिए, वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण)

अधिनियम, 1981, पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986, राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995 और राष्ट्रीय पर्यावरण अपील प्राधिकरण अधिनियम, 1997 में संशोधन करने या इन्हें निरसित करने के लिए पर्यावरण न्यायालयों के बारे में संसद द्वारा, अनुच्छेद 253 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, विधि बनाए जाने के मार्ग में कोई कठिनाई नहीं है। इस प्रकार, अनुच्छेद 253 के अधीन बनाई गई विधि जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 की धारा 28 के उपबंधों का, जो राज्य सरकारों को अपीलीय प्राधिकरण गठित करने की शक्ति प्रदान करते हैं, अध्यारोहण कर सकेगी। जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 की धारा 28 में अपीलीय प्राधिकरण गठित करने की जो शक्ति राज्य सरकारों को दी गई है, अपीलीय न्यायालय के रूप में, जैसाकि ऊपर बताया गया है, पर्यावरण न्यायालयों का प्रस्ताव करने वाले नए विधिक उपबंध करके उसका अतिक्रमण किया जा सकता है। ऐसी विधि संविधान के अनुच्छेद 253 के अधीन पारित की जा सकती है।

**अनुच्छेद 253 और पर्यावरण न्यायालयों के लिए विशेष विधि: क्या इसका उद्भव किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में, जिसमें भारत ने भाग लिया है, किए गए विनिश्चयों से होगा?**

क्या संसद द्वारा अनुच्छेद 253 के अधीन अधिनियम बनाकर, जिसे अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में किए गए किसी विनिश्चय को कार्यान्वित करने के लिए अधिनियम चिन्हित किया जाए, पृथक पर्यावरण न्यायालयों का गठन न्यायोचित माना जाएगा? यदि ऐसा है तो, ऐसी विधि बनाने के लिए अनुच्छेद 253 का अवलंबन लेना संसद के लिए अनुज्ञेय होगा।

इस प्रकार के दो उत्तर हैं।

(क) यह तथ्य कि राष्ट्रीय पर्यावरण प्राधिकरण अधिनियम, 1945 और राष्ट्रीय पर्यावरण अपील प्राधिकरण अधिनियम, 1997 संसद द्वारा (जैसीकि इस अध्याय में पीछे व्याख्या की गई है) रियो सम्मेलन, 1992 और स्टॉकहोम सम्मेलन 1972 में किए गए विनिश्चयों को कार्यान्वित करने के प्रयोजन से बनाए गए थे, यह दर्शाता है कि पर्यावरण न्यायालय अधिनियम भी संसद द्वारा इसी प्रकार बनाया जा सकता है इन सभी अधिनियमों का आशय पर्यावरण संबंधी विषयों के बारे में उठने वाले विवादों के बारे में निर्णयकारी निकायों की शीघ्र व्यवस्था करना है।

(ख) 1992 की रियो घोषणा में सम्मेलन में की गई घोषणाओं के प्रयोजनों को प्राप्त करने के लिए 'उपचारों' का स्पष्ट रूप से निर्देश किया गया है।

पर्यावरण और विकास विषय पर रियो की घोषणा का सिद्धान्त 10 समाधान और उपचार सहित न्यायिक और प्रशासनिक कार्यवाहियों में प्रभावी पहुंच का निर्देश करता है और इसमें कहा गया है ये उपलब्ध कराई जाएंगी।

सिद्धान्त 10 का पाठ निम्नलिखित है:

> "सिद्धान्त 10: पर्यावरण संबंधी विषयों के बारे में सर्वोत्तम कार्यवाही सभी स्तरों पर, सभी संबंधित नागरिकों की भागीदारी से संभव है। राष्ट्रीय स्तर पर, प्रत्येक व्यक्ति लोक अधिकारियों के अधिकार में रखी जाने वाली जानकारी, परिसंकटमय पदार्थों के बारे में तथा उनके समुदायों में हो रही गतिविधियों के बारे में जानकारी सहित, उपयुक्त रूप से पाने का अधिकारी होगा और उसे निर्णय करने की प्रक्रिया में भागीदारी का भी अवसर प्राप्त होगा। राज्य विस्तृत रूप से जानकारी उपलब्ध कराके लोक जागरूकता और भागीदारी को सुविधाजनक बनाएगा और प्रोत्साहन देगा।" समाधान और उपचार सहित, न्यायिक और प्रशासनिक कार्यवाहियों में प्रभावी पहुंच उपलब्ध कराई जाएगी।'

रियो घोषणा के सिद्धान्त 10 में न्यायिक उपचार उपलब्ध कराने की स्पष्ट रूप से अपेक्षा की गई है। इसलिए, संसद को अनुच्छेद 253 के अधीन पर्यावरण न्यायालयों के विषय पर विधि बनाने के लिए अपनी विशेष शक्तियों का आश्रय लेने में कोई कठिनाई नहीं है, चाहे इससे 'जल' जैसे विषय के बारे में, जो राज्य का विषय है, अनुसूची - सात की सूची -II की प्रविष्टियों का अतिक्रमण क्यों न होता हो।

**प्रस्तावित न्यायालय सूची-I की प्रविष्टि 13 के साथ पठित अनुचछेद 247 का भी निर्देश करेंगे।**

केन्द्रीय सरकार, अनुच्छेद 247 के अधीन अनुसूची-सात की सूची-I के लिए निर्देशनीय संसद द्वारा बनाई गई विधियों और 26.1.1950 को पहले से विद्यमान विधियों के कार्यान्वयन के प्रयोजन से अतिरिक्त न्यायालय स्थापित कर सकती है।



अनुच्छेद 247 का पाठ निम्नलिखित है:

> "अनुच्छेद 247: कुछ अतिरिक्त न्यायालयों का उपबंध करने की संसद की शक्ति इस अध्याय में किसी बात के होते हुए भी, संसद अपने द्वारा बनाई गई विधियों या विद्यमान विधि के, जो संघ सूची में प्रगणित विषय के संबंध में है, अधिक अच्छे प्रशासन के लिए अतिरिक्त न्यायालयों की स्थापना का विधि द्वारा उपबंध कर सकेगी।"

सूची-I की प्रविष्टि 13 का पाठ इस प्रकार है: अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, संगमों और अन्य निकायों में भाग लेना और उनमें किए गए विनिश्चयों का कार्यान्वयन।

अनुच्छेद 247 का पाठ कनाडा का संविधान से लिया गया है। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने इन्दू भूषण डे बनाम राज्य : (ए आई आर 1972 कलकत्ता) मामले में इस अनुच्छेद पर विस्तार से विचार किया है। परन्तु 'अतिरिक्त न्यायालयों' शब्दों की व्याख्या नहीं की गई । हमारे विचार में, अतिरिक्त न्यायालयों शब्दों को व्यापक अर्थ में लिया जाना चाहिए और प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालय जैसे विशेष न्यायालायों के लिए भी लागू होना चाहिए। हमारे विचार में, 'अतिरिक्त शब्द का अर्थ वर्तमान समस्त न्यायालयों की संख्या के अतिरिक्त से लिया जाना चाहिए और यह आवश्यक नहीं है कि ऐसे न्यायालयों का वर्ग विद्यमान हो। वास्तव में, जब कभी केन्द्रीय सरकार किन्हीं विशेष वर्ग के मामलों के लिए पहली बार न्यायालयों की स्थापना करती है, यह उपबंध लागू होता है और इस बात में कोई तर्क नहीं है कि अनुचछेद 247 का आश्रय तब तक नहीं लिया जाएगा जब तक कि उस वर्ग या श्रेणी के मामलों के लिए विद्यमान न्यायालय न हों। अन्यथा, अनुच्छेद 247 का अवलंब कभी भी नहीं लिया जा सकेगा। जब ऐसे न्यायालय विद्यमान हैं और इन्हें पहली बार स्थापित किया जा सकता है तब यह तर्क नहीं दिया जा सकता कि पहले ऐसे न्यायालय नहीं थे तो इसलिए इन्हें पहली बार भी स्थापित नहीं किया जा सकेगा। किसी न किसी दिन तो ये पहली बार स्थापित होंगे ही।

इसके अतिरिक्त, 42वें संविधान (संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा सूची-II की प्रविष्टि 3 से इन शब्दों को निकालते हुए सूची-III में जोडी गई प्रविष्टि 11 क की दृष्टि से, संसद 'न्याय प्रशासन' शीर्ष के अन्तर्गत इन प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालयों की स्थापना कर सकती है। उस प्रविष्टि में 'न्यायालयों' शब्द के अन्तर्गत प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालय भी आ जाते हैं जो सिविल न्यायालय हैं। 'विशेष न्यायालय विधेयक, 1978 – ए आई आर 1979 एस सी 69 देंखे।

**उच्च न्यायालय में अपील दायर करने का अधिकार**

उच्चतम न्यायालय में विधिक अपील दायर करने के अधिकार का निर्देश अनुसूची-सात की सूची-I की प्रविष्टि 77 के अधीन किया जा सकेगा। 'सी ई जी ए टी', एम आर टी पी अधिकरण', उपभोक्ता (संरक्षण) अधिनियम, 1986' और पोटा (विस्तृत चर्चा के लिए अध्याय-ग्यारह देंखे)और कम्पनी अधिनियम, 1956 के नए संशोधनों के आदेशों के विरूद्ध अपील करने के अधिकार प्राप्त है।

## अध्याय-आठ

### पर्यावरण न्यायालयों को कतिपय मूलभूत सिद्धान्तों का पालन करना होगा

हमारा विचार है कि पर्यावरण न्यायालयों को निम्नलिखित सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए। यह सिद्धान्त पर्यावरण न्यायालयों के बारे में प्रस्तावित विधि का अंग होने चाहिए।

**''पौल्यूटर पेयज'' सिद्धान्त**

पौल्यूटर पेयज सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर 1972 में पहली बार पर्यावरण नीतियों के अन्तर्राष्ट्रीय पहलुओं के संबंध में आर्थिक सहयोग तथा विकास संगठन (ओ आई सी डी) परिषद की सिफारिश में स्वीकार किया गया था। आर्थिक सहयोग तथा विकास संगठन द्वारा 1989 में आकस्मिक प्रदूषण पर पौल्यूटर पेयज सिद्धान्त को लागू करने के बारे में अपनी सिफारिश में 1974 के सिद्धान्त का पुनरूत्थान किया और कहा कि यह सिद्धान्त दीर्घकाल से चले आ रहे प्रदूषकों तक ही सीमित नहीं रहेगा । 1991 में आर्थिक सहयोग तथा विकास संगठन परिषद ने पर्यावरण नीति में मितव्ययी उपकरणों के प्रयोग पर अपनी सिफारिश में इस सिद्धान्त को फिर से दोहराया।

यूरोपीय काउंसिल ने वर्ष 1975 में अपनी सिफारिश 75/436 में इस सिद्धान्त को स्वीकार किया और पांचवें पर्यावरण कार्य कार्यक्रम में, 2001 में यूरोपीय काउंसिल के मार्गनिर्देशों में और अपशिष्ट रूपरेखा निर्देश 1991 में तथा निर्देश 1999/31/ईसी के अनुच्छेद 10 और निर्देश 2000/क्रि/ईसी के अनुच्छेद 99 में इसे दोहराया गया। इसे एकल यूरोपीय अधिनियम (एस्ईए) में अनुच्छेद 130 आर (जैड) [नया अनुच्छेद 174(2)] द्वारा और यूरोपीय काउंसिल संधि के अनुच्छेद 131 द्वारा स्वीकार किया गया।

बेल्जियम, फ्रांस और जर्मनी की राष्ट्रीय विधियों में इस सिद्धान्त का निर्देश किया गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय विधि में इस सिद्धान्त को 1980 के एथेन प्रोटोकाल, ट्रांस बाउन्डरी इफैक्ट्स इन्डस्ट्रील एक्सीडेंटस विषय पर 1992 के हेलसिंकी कन्वेंशन, पर्यावरण के लिए क्षतिकारक कार्यों के परिणामस्वरूप होने वाली क्षति के लिए नागरिक दायित्व विषय पर 1993 के लुगानों सम्मेलन में समाविष्ट किया गया है। 'एनवायरमेंटल प्रिंसिपल्स' (लेखक निकोलस डी साडेलर, आक्सफोर्ड, 2002) में पृष्ठ 23-24 पर ऐसी बहुत सी संधियों और सम्मेलनों का उल्लेख किया गया है।

सर्वप्रथम इस सिद्धान्त का उल्लेख 1987 में ब्रन्टलैण्ड रिपोर्ट में किया गया था। इन्डियन काउंसिल फार एनवायरो-लीगल एक्शन बनाम युनियन आफ इन्डिया: 1996(3) एस सी सी 212, मामले में भी इस सिद्धान्त का निर्देश किया गया। यह कहा गया। (पृष्ठ 246, पैरा 651):

> ''.....हमारा विचार है कि इस संबंध में विकसित किया जाने वाला कोई भी सिद्धान्त सरल, व्यवहारिक और देश की परिस्थितियों के अनुकूल होना चाहिए.....एक बार किया गया कोई कार्य परिसंकटमय या मूलत: खतरनाक सिद्ध हो जाता है तो, ऐसा कार्य करने वाला व्यक्ति उस नुकसानी की भरपाई करेगा जो उसके इस प्रकार के कार्य से किसी अन्य व्यक्ति को हुई है चाहे उसने वह कार्य करते हुए न्यायोचित सावधानी बरती हो।''

वैल्लोर सिटीजनस वैल्फेयर फोरम बनाम यूनियन आफ इन्डिया: 1996(5) एस सी सी 647, (पृष्ठ 659), मामले में न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह ने कहा था:

> ''दी पौल्यूटर पेयज प्रिंसिपल'' की, जैसी व्याख्या इस न्यायालय ने की है उससे अभिप्रेत है कि पर्यावरण को होने वाली क्षति के पूर्ण दायित्व का आशय न केवल प्रदूषण से पीडित व्यक्तियों को प्रतिकर का संदाय करना ही है अपितु पर्यावरण को पहुंची क्षति को ठीक करने पर आने वाली लागत वहन करना भी है। क्षतिग्रस्त पर्यावरण को स्वस्थ बनाना अविरत विकास की प्रक्रिया का ही एक अंग है और इस प्रकार प्रदूषणकर्ता व्यक्तिगत पीडितों को प्रतिकर का संदाय करेगा तथा क्षतिग्रस्त पारिस्थितिकी को स्वस्थ बनाने पर आने वाली लागत भी वहन करेगा।''





पीड़ित व्यक्ति तथा पर्यावरण को क्षति के प्रतिकर का संदाय करने का सिद्धान्त राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995 की धारा 3 में दिया गया है। जैसाकि कहा जा चुका है, धारा 3(1) प्रतिकर के संदाय का निर्देश करती है और यह अनुसूची में विनिदिष्ट शीर्ष के अनुसार होगा। अनुसूची में (क) से (ढ) तक मदें दी गई हैं। इन मदों में से (क) से (ङ) तक प्रदूषण से प्रभावित हुए व्यक्ति से संबंधित हैं और (च) से (ढ) तक पशु पक्षियों सहित पर्यावरण की क्षति से संबंधित हैं।

**परिसंकटमय पदार्थ - सम्पूर्ण दायित्व**

सम्पूर्ण या निश्चित दायित्व वह है जहां दोष को स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है। यह सिद्धदोष दायित्व है।

पर्यावरण के लिए क्षतिकारक कार्यों के परिणामस्वरूप होने वाली क्षति के लिए नागरिक दायित्व विषय पर लुगानों सम्मेलन 1993, पर्यावरणीय दायित्व विषय पर यूरोपीय कमीशन ग्रीन पेपर (1993), स्वीडीश पर्यावरण संहिता (2000) के प्रदूषित भूमि के लिए दायित्व संबंधी अध्याय में यह सुझाव दिया गया है कि पौल्यूटर पेयज प्रिंसिपल के लिए निश्चित दायित्व व्यवस्था स्थापित करने की आवश्यकता है। परमाणु विषय पर चार सम्मेलन हुए हैं, एक 1960 में, दो 1963 में तथा चौथा 1971 में, जिनमें सम्पूर्ण दायित्व निश्चित किया गया है। इसके अतिरिक्त, तेल के बहने के बारे में 1969 1971 और 1992 में भी सम्मेलन हुए हैं जिनमें पूर्ण दायित्व निर्धारित किया गया है। अभी हाल ही में, पर्यावरणीय दायित्व विषय पर अपने श्वेत-पत्र में, यूरोपीय कमीशन ने दो कारणों से दोष से विलग दायित्व पर बल दिया है: पहला कारण यह है कि पर्यावरण दायित्व के मामलों में वादी के लिए दोष सिद्ध करना बहुत कठिन है, और दूसरे यह व्यक्ति ही है जो मूलत: परिसंकटमय कार्य करता है पीडित व्यक्ति या समाज नहीं। इसलिए, उसे ही किसी भी होने वाले खतरे का दायित्व वहन करना होगा।

तथापि, हमारे न्यायालयों या विधियों ने निश्चित दायित्व के सिद्धान्त को उन सभी मामलों में लागू नहीं किया है जहां ''पौल्यूअर पेयज प्रिंसिपल'' लागू होता है अपितु सम्पूर्ण दायित्व को ऐसे मामलों तक सीमित रखा है जहां किसी व्यक्ति या संपत्ति को परिसंकटमय पदार्थों के प्रयोग से क्षति पहुंची है।

ओलियम गैस रिसने के मामले में, (एम सी मेहता बनाम यूनियन आफ इन्डिया: ए आई आर 1987 एस सी 1086) उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि कोई उद्यम जो परिसंकटमय या मूलत: खतरनाक उद्योग चला रहा है, जिससे उद्योग में कार्य करने वाले व्यक्तियों तथा उद्योग के निकटवर्ती क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों के स्वास्थ्य और सुरक्षा को खतरा है, यह सुनिश्चित करना उसका दायित्व और अपरिहार्य कर्त्तव्य है कि उसके इस प्रकार किए जा रहे परिसंकटमय और खतरनाक स्वरूप के कार्यों से किसी को भी कोई हानि नहीं पहुंचेगी। इस प्रकार की क्षति के लिए प्रतिकर का दायित्व उद्यम पर होना चाहिए और उद्योग का यह कहने का कोई अर्थ नहीं होगा कि उसने सभी प्रकार की न्यायोचित सावधानी बरती है और क्षति उसकी किसी प्रकार की उपेक्षा के कारण नहीं हुई है। जिनता बड़ा और धनाढ्य उद्यम हो, उसके परिसंकटमय तथा खतरनाक कार्य किए जाने के परिणामस्वरूप हुई दुर्घटना से होने वाली क्षति के मामले में यह साबित करना अब संभव नहीं रह गया है कि क्षति को पहले से नहीं आंका जा सकता था या फैक्टरी ने भूमि या परिसर का अप्राकृतिक प्रयोग नहीं किया था जैसाकि रिलैण्डस बनाम फ्लैचर मामले में निर्धारित विधि के अधीन स्थिति थी। इस सिद्धान्त को इन्डियन काउंसिल फार एनवायरन-लीगल एक्शन बनाम यूनियन आफ इन्डिया: 1996(3) एस सी सी 212 (पृष्ठ 246, पैरा 65 देखें) तथा उच्चतम न्यायालय के अन्य मामलों में दोहराया गया।

उक्त सिद्धान्त (दोष न होने के सिद्धान्त), वास्तव में, राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995 की धारा 2(क) में ''दुर्घटना,'' 2 (ङ) में ''हथालना'' और 2 (च) में ''परिसंकटमय पदार्थ'' शब्दों को विशेष परिभाषा के साथ पठित धारा 3 में समाविष्ट किया गया था। धारा 2 (क) और 2 (ड़) परिसंकटमय पदार्थों का निर्देश करती हैं जिनके प्रयोग और हथालने से दुर्घटना होती है। धारा 2 (च) में ''परिसंकटमय पदार्थ'' को परिभाषित किया गया है जिससे ऐसा कोई पदार्थ या निर्गित अभिप्रेत है जो पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986

में "परिसंकटमय पदार्थ" के रूप में परिभाषित है और केन्द्रीय सरकार द्वारा लोक दायित्व बीमा अधिनियम, 1991 में विनिर्दिष्ट मात्रा से अधिक है। धारा 3 का पाठ निम्नलिखित है:

"धारा 3: कतिपय मामलों में दोष न होने के सिद्धान्त पर प्रतिकर का संदाय करने का दायित्व:

(1) जहां किसी दुर्घटना के परिणामस्वरूप (कर्मकार से भिन्न) किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है या उसे क्षति पहुंचती है या किसी सम्पत्ति को या पर्यावरण को कोई नुकसान पहुंचता है वहां स्वामी या ऐसी मृत्यु, क्षति या नुकसान के लिए अनुसूची में विनिर्दिष्ट सभी या किन्हीं शीर्षों के अधीन प्रतिकर का संदाय करने का दायी होगा।

(2) उपधारा (1) के अधीन प्रतिकर के किसी दावे में, दावेदार से यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह यह अभिवाक् करे और साथ ही यह सिद्ध करे कि वह मृत्यु, क्षति या नुकसान, जिनके बारे में दावा किया गया है, किसी व्यक्ति के किसी दोषपूर्ण कार्य, उपेक्षा या व्यतिक्रम के कारण हुआ है।

स्पष्टीकरण: (I) 'कर्मकार' .....

(II) 'क्षति'

(3).....

.....

खंड (3) विभिन्न अपकृत्यकर्ताओं के बीच प्रतिकर के दायित्व को प्रभाजित करने का निर्देश करता है। अनुसूची में (क) से (ढ) तक खंड दिए गए है। खंड (क) से (ङ) तक व्यक्ति या सम्पत्ति को होने वाली क्षति से संबंधित है; खंड (च) से (ढ) पारिस्थितिकी को पहुंचाने वाली क्षति से संबंधित है।

पूर्वावधानी सिद्धान्त

पूर्वावधानी सिद्धान्त का उद्भव 1980 के दशक के मध्य में जर्मन वोर्सोजप्रिन्जिप से हुआ। नार्थ सी मंत्रालयी सम्मेलन में राज्यों द्वारा किए गए निर्णयों से अन्तर्राष्ट्रीय विधि में इस सिद्धान्त का प्रथम प्रयोग हुआ। नार्थ सी के संरक्षण पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में 1984 की ब्रेमेन मंत्रालयी घोषणा में, नार्थ सी के संरक्षण के लिए दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन की 1987 की लन्दन की मंत्रालयी घोषणा में, नार्थ सी के संरक्षण पर तीसरे सम्मेलन की 1990 की हेग घोषणा में और 'नार्थ सी' के संरक्षण पर चौथे सम्मेलन की 1995 की घोषणा में इसका स्पष्ट निर्देश किया गया है।

वर्ष 1980 से समुद्री प्रदूषण के क्षेत्र के लिए भी इसका विस्तार किया गया और 1990 के 'ओ पी आर सी' सम्मेलन में तथा अन्य विभिन्न सम्मेलनों में इसे उपवर्णित किया गया। तत्पश्चात समुद्र तटीय क्षेत्रों और मत्स्य पालन क्षेत्र और वातावरण के प्रदूषण के लिए इसे लागू किया गया। (एनवायरमेंटल प्रिंसिपल्स, ऑक्सफोर्ड, 2002, लेखक निकोलस डी सडेलियर, पृष्ठ 94-95 देखें)।

शीघ्र ही इस सिद्धान्त को, 1990 में बर्जेन में संयुक्त राष्ट्र यूरोपीय आर्थिक आयोग (यूएनईसीई) द्वारा, 1989 में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी) की प्रशासनिक परिषद द्वारा, 1990 में अफ्रीकी एकता (सीएयू) की मंत्रिपरिषद् द्वारा और 1990 में एशिया और पैसिफिक के लिए संयुक्त राष्ट्र आर्थिक आयोग पर्यावरण (ईएससीएपी) विषय पर आयोजित हुए मंत्रालयी सम्मेलन में और अन्ततः जनवरी 1991 में आर्थिक सहयोग तथा विकास संगठन (ओ ई सी डी) के पर्यावरण मंत्रियों के सम्मेलन में, पर्यावरण नीति के सामान्य सिद्धांत के रूप में सम्मिलित कर लिया गया।

यूरोपीय मानवाधिकार द्वारा इसे स्वीकार कर लिया गया है और विश्व व्यापार संगठन के विवाद समाधान निकायों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय समुद्री विधि अधिकरण तथा यूरोपीय सामुदायिक विधि द्वारा प्रयोग किया जाता है।

तत्पश्चात, पर्यावरण और विकास विषय पर 1992 में रियो में आयोजित हुए संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में सिद्धांत 15 के रूप में इस सिद्धांत को विश्वव्यापी मान्यता प्राप्त हुई जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरण और विकास पर घोषणा की गई। इसी प्रकार, 1992 में हुए जलवायु परिवर्तन विषय पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क सम्मेलन में भी इसका निर्देश किया गया। 1992 के जैव-विविधता सम्मेलन की प्रस्तावना में भी इसका निर्देश किया गया।



यूरोपीय आर्थिक आयोग के सदस्य देशों (जर्मन, फ्रांस, बैल्जियम, स्वीडन) में राष्ट्रीय विधानों में इसे स्वीकार कर लिया गया है। आर्थिक आयोग संधि के अनुच्छेद 174(2) के कारण ब्रिटेन में भी इसे लागू किया जाता है। इसे अमरीकी न्यायालयों में तथा आस्ट्रेलिया में भी लागू किया जाता है।

भारत के उच्चतम न्यायालय ने वैल्लोर सिटिजनस् वैल्फेयर फोरम बनाम यूनियम ऑफ इन्डिया 1996(5) एस सी सी 647 मामले में पूर्वावधानी के सिद्धांत का निर्देश किया है और इसे हमारे देश में रूढिजन्य विधि का भाग घोषित किया है।

यह सिद्धांत वर्ल्ड फॉर चार्टर फॉर नेचर, 1982 विषय पर संयुक्त राष्ट्र महासभा के संकल्प में निर्धारित सिद्धांत 11 में अंतर्विष्ट है और इसे 1992 में रियो में हुए सम्मेलन के सिद्धांत 15 में फिर से दोहराया गया है। इसका पाठ निम्नलिखित है:

"सिद्धांत 15: पर्यावरण के संरक्षण के लिए, पूर्वावधानीपूर्ण दृष्टिकोण राज्यों द्वारा उनकी क्षमता के अनुसार, व्यापक रूप से प्रयोग किया जाएगा और जहां गंभीर और अप्रतिवर्तनीय क्षति के खतरे हों वहां पूर्ण वैज्ञानिक निश्चितता न होने की पर्यावरण क्षति को रोकने के लिए लागत प्रभावी उपायों का प्रस्ताव करने के लिए कारण के रूप में प्रयोग नहीं किया जाएगा।"

वैल्लोर मामले में, 1996(5) एस सी सी 647, न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह ने हमारी विधि के भाग के रूप में इस सिद्धांत का प्रयोग किया है (पृष्ठ 660, पैरा 14):

"उपर्युक्त संवैधानिक और विधिक उपबंधों की दृष्टि से, हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि पूर्वावधानी का सिद्धांत (प्रीकॉशनरी प्रिंसिपल) और पौल्यूटर पेयज प्रिंसिपल देश की पर्यावरण विधि का ही भाग है।"

ए॰पी॰ पौल्यूशन बोर्ड: 1999(2) एस सी सी 718 मामले में उच्चतम न्यायालय ने इस सिद्धांत के एक अनुच्छेद (वोल्यम 22, हार्व एनवर, एल॰ रिव्यू 1998, 547 पर पी॰ 509) का निम्न प्रकार निर्देश किया है (पैरा 34 देखें):

"विनिश्चयकर्ता को अभिलेख का मूल्यांकन करने और इस निष्कर्ष पर पहुंचने से नहीं रोका जा सकता कि किसी विनिश्चय पर पहुंचने के लिए सूचना अपर्याप्त है। यदि विश्वास के साथ कोई निर्णय कर पाना संभव नहीं है तो सावधानी की दिशा में और ऐसे कार्यों को रोकने की दिशा में कुछ त्रुटि हो सकती है जिससे गंभीर या अप्रतिवर्तनीय क्षति हो सकती है बाद में, कोई सूचित विनिश्चय, जब अतिरिक्त डाटा उपलब्ध हो या संसाधन आगे और अनुसंधान करने की अनुज्ञा देते हों, किया जा सकता है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि पर्यावरणीय प्रबंधन में बहुत सावधानी बरती जाती है, न्यायिक और विधायी साधनों द्वारा सिद्धांत का कार्यान्वयन आवश्यक है।"

निवारण का सिद्धांत

निवारण सिद्धांत ऐसे असावधान प्रदूषणकर्ताओं का ध्यान रखता है जो पर्यावरण को इसलिए प्रदूषित करते रहते हो कि हानिकारक कार्यों या नियमों के उल्लंघन से जो लाभ वे अर्जित करते है वह प्रदूषण के लिए प्रतिकर के संदाय का छोटा सा अंश है। अतः प्रदूषणकर्ता को प्रदूषण हटाने के लिए बाध्य करने की तुलना में प्रदूषण के निवारण को ही प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

ट्रेन रमेल्टर का मामला ऐसा मामला था जिसमें अंतर्राष्ट्रीय निर्णय दिया गया और जिसमें कनाडा को ढलाईकारखानों से पडौसी देशों में होने वाले प्रदूषण को रोकने के लिए संरक्षणात्मक उपाय करने का निर्देश दिया गया था। इसे अंतर्राष्ट्रीय विधि के अधीन सीमा पार के लिए बाध्यकारी उपाय माना गया। यह सिद्धांत, मानव पर्यावरण पर 1972 की स्टॉकहोम घोषणा के सिद्धांत 21 में समाविष्ट किया गया जिसमें यह सुनिश्चित करने के लिए राज्यों के दायित्व पर बल दिया गया था कि उनकी अधिकारिता या नियंत्रण के भीतर के क्रियाकलाप अन्य राज्यों को या राष्ट्रीय क्षेत्राधिकार के बाहर के क्षेत्रों के पर्यावरण को नुकसान नहीं पहुंचाते हैं। इस सिद्धांत को रियो घोषणा के सिद्धांत 2 में दोहराया गया। इस सिद्धांत को 1979 की एल॰आर॰ए॰टी॰पी॰ कन्वेंशन में, ओजोन क्षेत्र के संरक्षण के लिए 1985 की वियना कन्वेंशन तथा 1992(बी) में और यू॰एन॰एफ॰, सी॰सी॰सी॰ की प्रस्तावना में सम्मिलित किया गया है। यह ई॰ सी॰ विधि का भी एक भाग है।

समुद्र पर्यावरण, गहरे समुद्र में मत्स्यपालन क्षेत्र, नदियों के संरक्षण, वातावरणीय प्रदूषण, आल्पस, अंटार्कटिका आदि विषयों पर इस सिद्धांत के आधार पर संधियां की गई है (देखें एनवायरमेंटल प्रिंसिपलस् आक्सफोर्ड 2002, पी॰पी॰ 62 से 65, लेखक निकोलस डी सेडेलीयर)।

अविरत विकास की धारणा को निवारण सिद्धांत से, जैसाकि दानुबे पर बांध से संबंधित गाबाकोवा-नाजिमेयर्स मामले में आई सी जे की व्यवस्था में बताया गया है, समर्थन मिलता है।

राष्ट्रीय विधियों में भी इस सिद्धांत को मान्यता दी गई है। स्विस, दानिश, बेल्जीयन, फ्रांस, ग्रीक विधियों में भी इस सिद्धांत को सम्मिलित किया गया है। ऐसा ही यू॰ एस॰ पौल्यूशन प्रीवेंशन एक्ट, 1990 (पूर्वोक्त, निकोलस डी सेडेलीयर, पृष्ठ 70 से 72) में किया गया है। सर्वोतम उपलब्ध प्रौद्योगिकियां (बी॰ए॰टी॰) इस सिद्धांत का दूसरा पहलु है। पर्यावरण संघात निर्धारण एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जो स्पष्ट निवारण की अपेक्षा करती है। इसे रियो घोषणा के सिद्धांत 17 में दोहराया गया है।

**साबित करने के नए भार का सिद्धांत**

प्रकृति के लिए वर्ल्ड चार्टर पर संयुक्त राष्ट्र महासभा के 1982 के संकल्प में यह सिद्धांत स्थापित किया गया। इसमें कहा गया है–

> "उन क्रियाकलापों से पूर्व, जिनसे प्रकृति को महत्वपूर्ण जोखिम होने की संभावना है, सर्वांगीण जांच की जाएगी; उनके प्रस्तावक उन प्रत्याशित लाभों को दर्शाएंगे जो प्रकृति की संभावित क्षति से बहुत अधिक होंगे ....."

ई॰सी॰ विधि, औषधियों, कीटनाशकों, खाद्य उत्पादों, योज्यकों, खाद्य पदार्थों इत्यादि के उपयोग की दशा में सबूत के भार में परिवर्तन दर्शाती है। ई॰सी॰ की परिसंकटमय अपशिष्ट की नई सूचियों में सूचिबद्ध अपशिष्टियों की 200 श्रेणियां दी गई हैं।

तथापि, अमेरीका में, उच्चतम न्यायालय ने इन्डस्ट्रीयल यूनियन डिपार्टमेंट ए॰एफ॰एल॰-सी॰ आई॰यू॰ बनाम अमेरीकन पैट्रोलियम इंस्टीटयूट: 448 यू एस 632-635 (1980) पर मामले में, प्रारम्भिक भार विनियमक पर रखा है, विभिन्न अमेरिकी संविधियों में सबूत के भार में परिवर्तन किया गया है जैसाकि फेडरल फूडस एण्ड ड्रग एक्ट (21 यूएस सी, सैक्शन 348 (सी) (3)(ए), दी फेडरल इंसेक्टीसाइड फंगीसाइड एण्ड रोडेन्टीसाइड एक्ट (एफ आई एफ ए) (21 यूएस, सैक्शन 360(ए) (4)(बी), मेरीन मैमल प्रोटेक्शन एक्ट (16 यू एस सी, सैक्शन 1371) और ईएसए। विश्व व्यापार संगठन अपीलीय निकाय ने भी इस सिद्धांत को लागू किया है।

पर्यावरण संघात निर्धारण का आशय किसी परियोजना के संभाव्य संघातों से जुड़ी हुई अनिश्चितताओं को कम करना है।

वैल्लोर मामले 1996 (5) एस सी सी 647 में, न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह ने निम्नलिखित अभिमत व्यक्त किया (पृष्ट 658 देखें) (पैरा 11):

> "(iii) साबित करने का दायित्व' कर्ता या विकासकर्ता/उद्योगपति पर यह दर्शित करना है कि उसका कार्य पर्यावरणीय रूप से सुसाध्य है।"

एम्॰पी॰पौल्यूशन कन्ट्रोल बोर्ड: 1999(2) एस सी सी 718(पृ॰ 734 पर) मामले में, यह स्पष्ट किया गया था कि पूर्वावधानी के सिद्धांत से नया 'साबित करने का भार' का सिद्धांत विकसित हुआ है। उन पर्यावरणीय मामलों में जहां कार्य के हानिकार प्रभाव की अनुपस्थिति का सबूत प्रश्नगत है वहां साबित करने का भार उन पर होता है जो यथापूर्व-स्थिति को बदलना चाहते हैं। इसे बहुधा साबित करने के भार के उलटने की संज्ञा दी जाती है, क्योंकि अन्यथा, पर्यावरणीय मामलों में, उनको जो परिवर्तन का विरोध करते हैं, साक्ष्य का भार उठाने के लिए विवश किया जाएगा और यह ऐसी प्रक्रिया होगी जो उचित नहीं है। अत: यह आवश्यक है कि वह पक्षकार जो अपेक्षाकृत कम प्रदूषित यथास्थिति का बनाए रखने का प्रयास कर रहा है उस पर भार नहीं होना चाहिए और वह पक्षकार जो इसको बदलना चाहता है उसको यह भार वहन करना चाहिए।

**अविरत विकास**

देशों का विकास और गरीबी उन्मूलन तथा पर्यावरण के संरक्षण के बीच संतुलन होना चाहिए। रियो में अर्थ समिट डिक्लेरेशन (1992) के सिद्धांत 3 में कहा गया है कि "विकास का अधिकार इस प्रकार से प्राप्त किया



जाना चाहिए कि वह वर्तमान और भावी पीढ़ियों की विकासीय और पर्यावरणीय आवश्यकताओं को समान रूप से पूरा कर सके"। सिद्धांत 4 में कहा गया है कि अविरत विकास की प्राप्ति के लिए पर्यावरणीय संरक्षण विकास प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग होगा और उसे पृथक रखते हुए उस पर विचार नहीं किया जा सकता। सिद्धांत 5 बताता है कि जीवन स्तर पर असमानता को कम करने और विश्व के लोगों के बहुमत ही बेहतर आश्यकताओं के लिए सभी राज्य और सभी लोग अविरत विकास के लिए अपरिहार्य अपेक्षा के रूप में गरीबी उन्मूलन के आवश्यक कार्यों में सहयोग करेंगे। सिद्धांत 6 अपेक्षा करता है कि विकासशील देशों की आवश्यकताओं और विशेष परिस्थिति को प्राथमिकता दी जाएगी। सिद्धांत 7 अपेक्षा करता है कि विकसित देश उस दायित्व को स्वीकार करते हैं जिससे वे अविरत विकास के अंतर्राष्ट्रीय लक्ष्य में व्यवहार करेंगे। सिद्धांत 8 अपेक्षा करता है कि सभी लोगों के लिए जीवन की उच्च क्वालिटी अविरत विकास प्राप्त करने के लिए राज्यों को, उत्पादन और उपभोग के अनुपयुक्त प्रतिमान को दूर करना तथा कम करना चाहिए और उपयुक्त जनसांख्यिकी नीतियों का संवर्धन करना चाहिए। सिद्धांत 9, अविरत विकास के लिए निर्माण क्षमता में सुधार की अपेक्षा करता है। सिद्धांत 27 यह अपेक्षा करता है कि राज्य और लोग अविरत विकास के प्रयोजन के लिए सहयोग करें।

दानुबे पर बांध के बारे में गाबाकोवो बनाम नाजिमरस: (1997) मामले में आईसीजे की व्यवस्था में, बहुमत से विचार व्यक्त किया गया कि "अविरत विकास की धारणा" पर्यावरण के संरक्षण के साथ आर्थिक विकास का समाधान करने की आवश्यकता से पैदा हुई है। न्यायमूर्ति वीरामंत्री ने इससे भी आगे जाकर कहा कि यह धारणा आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय विधि का एक सिद्धांत बन गई है।

यूरोपीयन संघ के मूल अधिकारों के दिसम्बर 2000 के चार्टर का अनुच्छेद 37 विशेष रूप से अविरत विकास के सिद्धांत का निर्देश करता है। विश्व व्यापार संगठन करार की प्रस्तावना में भी इसका निर्देश किया गया है। विश्व व्यापार संगठन की 2001 की मंत्रालयी घोषणा में भी ऐसा ही है। ई॰सी॰ संधि का अनुच्छेद 2 इसका निर्देश करता है।

इस धारणा का उल्लेख ब्रंटलैंड की 1987 की रिपोर्ट में किया गया था। "अविरत विकास" का सिद्धांत पर्यावरण विधि के मूल सिद्धांतों का आधार है। इस सिद्धांत का निर्देश वैल्लोर सिटीजनस् वेल्फेयर फोरम: 1996(5) एस सी सी 647 मामले में किया गया था। यह कहा गया था कि पारिस्थितिकी की रक्षा करने और विकास के बीच आज कोई विरोध नहीं है। यह एक महत्वपूर्ण धारणा है जो स्टॉकहोम से रियो सम्मेलनों के बीच दो दशक के अंतराल के बाद विकसित हुई है; यह एक ऐसा सिद्धांत है जो समर्थनकारी पारिस्थितिकीय प्रणाली की वहनीय क्षमता में रहते हुए गरीबी उन्मूलन और मानव जीवन की गुणवत्ता में सुधार की अपेक्षा करता है। ब्रंटलैंड की रिपोर्ट में निम्नलिखित बात कही गई है:

> "विकास जो, भावी पीढ़ियों को उनकी अपनी आवश्यकता पूरी करने में सक्षम रहते हुए वर्तमान की आवश्कताओं को पूरा करता है।"

यह एक ऐसा सिद्धान्त है जो विकास और पारिस्थितिकी को संतुलित करता है। "पौल्यूटर पेजय" का सिद्धान्त इस धारणा का ही भाग है चूंकि यह प्रदूषणकर्ता को यथापूर्व स्थिति बहाल करने की, जैसी कि वह प्रदूषण से पहले थी, अपेक्षा करता है।

नर्मदा बचाओं आन्दोलन बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया: 2000(10) एस सी सी 664 मामले में, यह बताया गया था कि जब किसी परियोजना का प्रभाव ज्ञात हो तब अविरत विकास का सिद्धान्त लागू हो जाएगा जो यह सुनिश्चित करेगा कि पारिस्थितिकीय संतुलन के परिरक्षण के लिए रक्षोपाय हैं और किए जा सकते हैं। 'अविरत विकास' का तात्पर्य है कि किस प्रकार का या किस सीमा तक विकास किया जा सकता है जिसे प्रकृति/पारिस्थितिकी द्वारा कम करके या कम किए बिना बनाए रखा जा सकता है।"

वास्तव में, विभिन्न आधुनिक संविधानों में, क्षति से पर्यावरण के संरक्षण के लिए मूल अधिकार अविरत विकास के अधिकार से जुड़ा है। साउथ अफ्रीका का नवीनतम संविधान इसका एक उदाहरण है जिसका अनुच्छेद 24 इस पहलु से संबंधित है। इसका पाठ निम्नलिखित है:

> "अनुच्छेद 24: प्रत्येक को अधिकार है–
>
> (क) ऐसे पर्यावरण का जो, उनके स्वास्थ्य या स्वस्थ रहने के लिए हानिकारक नहीं है; और
>
> (ख) युक्तियुक्त विधायी और अन्य उपयों द्वारा वर्तमान और भावी पीढ़ियों के हित के लिए पर्यावरण को संरक्षित रखाना, अर्थात्-

(i) प्रदूषण और पारिस्थितिकीय क्षति का निवारण;

(ii) परिरक्षण को प्रोत्साहन; और

(iii) न्यायोचित आर्थिक और सामाजिक विकास को प्रोत्साहन देते हुए पारिस्थितिकीय अविरत विकास और राष्ट्रीय संसाधनों का उपयोग करना।''

संविधान के कार्यकरण की समीक्षा संबंधी राष्ट्रीय आयोग ने सुरक्षित पेय जल, स्वच्छ पर्यावरण के अधिकार का निर्देश किया है और संविधान में अनुच्छेद 30घ अन्त:स्थापित करने का प्रस्ताव किया है। आयोग द्वारा अनुमोदित अनुच्छेद 30घ का पाठ निम्नलिखित है:

''अनुच्छेद 30घ: सुरक्षित पेय जल, प्रदूषण निवारण, पारिस्थितिकीय परिरक्षण और अविरत विकास का अधिकार-

प्रत्येक व्यक्ति को-

(क) सुरक्षित पेय जल;

(ख) ऐसे पर्यावरण का जो, उनके स्वास्थ्य या स्वस्थ रहने के लिए हानिकारक नहीं है; और

(ग) वर्तमान और भावी पीढ़ियों के हित के लिए पर्यावरण को संरक्षित रखना, ताकि-

(i) प्रदूषण और पारिस्थतिकीय क्षति का निवारण किया जा सके;

(ii) परिरक्षण को प्रोत्साहन दिया जाये; और

(iii) न्यायोचित आर्थिक और सामाजिक विकास को प्रोत्साहन देते हुए पारिस्थितिकीय अवरित विकास और राष्ट्रीय संसाधनों का उपयोग सुनिश्चित किया जा सके।''

उपरोक्त आयोग ने पैरा 3.22.1 और 3.22.2(खंड-I) में कहा है कि स्वस्थ्य पर्यावरण और उसके संरक्षण का अधिकार और विकास का अधिकार ''सामूहिक अधिकार'' हैं जिन्हें अब अस्पष्ट रूप से 'तीसरी पीढ़ी के अधिकारों' के रूप में वर्णित किया गया है। ''अविरत विकास'' के अधिकार को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा अन्य असंक्राम्य अधिकार के रूप में वर्णित किया गया है। घोषणा में इस बात की मान्यता दी गई है कि ''मनुष्य विकास प्रक्रिया का केन्द्रीय विषय है और यह कि विकास नीति मनुष्य को विकास का मुख्य भागीदार और लाभार्थी बनाएगी''। 'विकास' को एक व्यापक आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया है जिसका उद्देश्य विकास से समस्त जनता का निरन्तर कल्याण और उसके लाभों का सभी को समान रूप से प्राप्त होना है। 1992 के रियो सम्मेलन में अविरत विकास के लिए मानव की चिन्ता केन्द्र बिन्दु के रूप में घोषित की गई है। इसमें कहा गया है कि प्रकृति के साथ सामंजस्य रखते हुए मानव को स्वस्थ्य और संरक्षित जीवन का अधिकार है (सिद्धान्त-1)। ''अविरत विकास की प्राप्ति के उद्देश्य से पर्यावरणीय संरक्षण विकास प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग होगा और इसे पृथक रखकर अविरत विकास पर विचार नहीं किया जा सकता''। न्यूयार्क में 1997 की 100 राष्ट्रों की अर्थ शिखर बैठक में इन सिद्धान्तों की अभिपुष्टि की गई थी।

### लोक न्याय का सिद्धान्त

'लोक न्याय' के सिद्धान्त का निर्देश उच्चतम न्यायालय द्वारा एम.सी. मेहता बनाम कमलनाथ: 1997(1) एस सी सी 388 मामले में किया गया था। सिद्धान्त का विस्तार पारिस्थितिकी प्रणाली का संरक्षण करने के प्रयोजन के लिए नदियों, वनों, समुद्री तटों, वायु इत्यादि जैसे प्राकृतिक संसाधनों तक है। राज्य न्यासी के रूप में प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण रखता है और वह न्यास भंग नहीं कर सकता। उपर्युक्त मामले में व्यास नदी के तट पर स्थित मोटल को पट्टे पर देने के राज्य के आदेश को, जिसके परिणामस्वरूप मोटल पानी के प्राकृतिक बहाव में बाधक बन रहा था, रद्द कर दिया गया और उस पब्लिक कम्पनी को, जिसने पट्टा प्राप्त किया था, क्षेत्र में पर्यावरण और पारिस्थितिकी के प्रत्यास्थापन की लागत की प्रतिपूर्ति का निर्देश दिया गया।

### अन्तर-पीढ़ी साम्या

1972 की स्टॉकहोम घोषणा के सिद्धान्त 1 और 2 इस धारण का निर्देश करते हैं। सिद्धान्त 1 बताता है कि वर्तमान और भावी पीढ़ियों के लिए पर्यावरण का संरक्षण करना और उसमें सुधार करना मनुष्य का सत्यनिष्ट



उत्तरदायित्व है। सिद्धान्त 2 में कहा गया है कि वर्तमान और भावी पीढ़ियों के हित के भूमि में राष्ट्रीय संसाधनों की सावधानीपूर्ण आयोजना और प्रबंधन द्वारा समुचित सुरक्षा की जानी चाहिए।

1992 की रियो घोषणा के सिद्धान्त 3 में कहा गया है कि विकास का अधिकार इसी रूप में प्राप्त किया जाना चाहिए जहां तक कि यह वर्तमान और भावी पीढ़ियों के विकासीय और पर्यावरणीय आवश्यकताओं को समान रूप से पूरा कर सके।

संयुक्त राष्ट्र महासभा का 1980 का संकल्प 37/7 भी वर्तमान और भावी पीढ़ियों के हित में विकास और प्रकृति के परिरक्षण के बीच संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता का निर्देश करता है।

वर्तमान पीढ़ी द्वारा भूमि, जल और अन्य प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन रोका जाना चाहिए ताकि उन्हें भावी पीढ़ी के हित के लिए परिरक्षित रखा जा सके।

फिलिपीन्स उच्चतम न्यायालय ने पारिस्थितिकी के परिरक्षण के लिए भावी पीढ़ियों का प्रतिनिधित्व करने वाले एक नागरिक समूह द्वारा फाइल किए गए मामले को ग्रहण किया। (माइनर्स ओपोसा बनाम सेक्रेटरी ऑफ दी डिपार्टमेंट ऑफ एनवायरमेंट एण्ड नेचुरल रिसोरसिज (डी.ई.एन.आर)(1994) 33 आई.एल.एम 173 (देखें के.आई. विभूति द्वारा लिखित राइट ऑफ फ्यूचर जनरेशनस्, वोल्यम-21 एकादमी लॉ रिव्यु पी. 219-235)।

फिलिपीन्स के 1987 के संविधान के अनुच्छेद 11 की धारा 16 में संतुलित और स्वस्थ पारिस्थितिकी का मूल अधिकार प्रदान किया गया है और राज्य को आदेश दिया गया है कि वह प्रकृति के साथ समन्वय और सामंजस्य में व्यक्तियों के संतुलित और स्वस्थ पारिस्थितिकी के अधिकार का संरक्षण और संवर्धन करे। फिलिपीन्स के तत्कालीन राष्ट्रपति ने उस संबंध में 1987 में कार्यकारी आदेश जारी किया था जिसमें ऐसे प्रदत्त अधिकार का न केवल वर्तमान पीढ़ी के लिए अपितु भावी पीढ़ी के लिए भी प्राप्त होने का विशिष्ट रूप से निर्देश किया गया था।

माइनर्स ओपोसा, फिलिपीनी अवयस्कों के समूह ने, जिसे ओपोसा के नाम से जाना जाता है, जिसमें उनके अपने-अपने माता-पिता भी सम्मिलित हुए थे, जो अपनी पीढ़ी के साथ-साथ अजन्मी पीढ़ी का भी प्रतिनिधित्व करते थे, उच्चतम न्यायालय से अनुच्छेद 11 की धारा 16 के अधीन प्रत्याभूत संतुलित और स्वस्थ पारिस्थितिकी के सांविधनिक अधिकार को अपने और अपने अजन्मे उत्तरजीवियों के लिए प्रवृत करने का अनुरोध किया और पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधन विभाग (डी.ई.एन.आर.) द्वारा टिम्बर लाइसेंस करार (टीएलए) के आधार पर जारी किए गए लट्ठा बनाने के सभी विद्यमान परमिटों को रद्द करने तथा पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधन विभाग को टिम्बर लाइसेंस करारों को स्वीकार करने, उन पर कार्यवाही करने, उनकी पुनरीक्षा करने या स्वीकृत करने से रोकने की मांग की।

उच्चतम न्यायालय ने आवेदकों को मामला फाइल करने की अनुज्ञा दे दी और आश्रयदाता के रूप में राज्य कर्त्तव्य पर बल दिया। न्यायालय ने यह अभिमत व्यक्त किया कि याचिकाकर्ता का आने वाली पीढ़ियों के लिए वाद लाने का अधिकार केवल अन्तर-पीढ़ीय दायित्व की धारणा पर आधारित हो सकता है। न्यायालय ने कहा:

''यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अगली पीढ़ी के लिए किसी संतुलित और स्वस्थ पारिस्थितिकी के उपभोग के लिए समन्वय और सामंजस्य को बनाए रखना प्रत्येक पीढ़ी का दायित्व है। इसे भिन्न रूप में कहें तो अवयस्कों का स्वस्थ पर्यावरण पाने का अपने अधिकार के दावे में, अपने दावे के साथ-साथ भावी पीढ़ी के लिए उस अधिकार का संरक्षण सुनिश्चित करने संबंधी उनके दायित्व का निर्वहन भी सम्मिलित है। न्यायालय की राय में वर्तमान पीढ़ी, आने वाली पीढ़ियों के लिए पर्यावरण की न्यासी और संरक्षक है। अन्यथा, पीढ़ियों को उत्तराधिकार में झुलसी हुई भूमि के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलेगा।''

इनको और अन्य सिद्धान्तों को पर्यावरण न्यायालयों द्वारा लागू करने की अपेक्षा की जानी चाहिए और इसके लिए विधि में उपबंध किया जाना चाहिए।

## अध्याय- नौ

### भारत में पर्यावरण न्यायालयों के लिए प्रस्ताव

जैसाकि अध्याय-एक में बताया गया है, उच्चतम न्यायालय ने एम.सी. मेहता बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया: 1986(2) एस सी सी 176 (पृष्ठ 202), मामले में एक न्यायाधीश और दो विशेषज्ञों को सम्मिलित करके क्षेत्रीय स्तर पर पर्यावरण न्यायालयों के गठन का परामर्श दिया था। उच्चतम न्यायालय द्वारा यह बात इन्डियन काउंसिल फॉर एनवायरो-लीगल एक्शन बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया: 1996(3) एस सी सी 212, मामले में दोहराई गई। अन्तिम रूप में, ऐसे पर्यावरण न्यायालयों की आवश्यकता का निर्देश ए.पी. पौल्यूशन कन्ट्रोल बोर्ड-II बनाम एम.वी. नायडू: 2001(2)एस सी सी 62, मामले में किया गया। न्यायालय ने अपेक्षा की थी कि विधि आयोग इस विषय का अध्ययन करे।

हमने पर्यावरण संबंधी मामलों के बारे में अध्याय-पांच में, भारत मे वर्तमान न्यायालय प्रणाली का तथा राज्य सरकारों द्वारा जल (प्रदूषण निवरण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974 की धारा 28 या वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1981 की धारा 31 या केन्द्रीय सरकार द्वारा पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा 25 के अधीन नौकरशाहों की अपीलीय प्राधिकारियों के रूप में नियुक्ति का निर्देश किया है। इस समय विशेष अधिनियमों के अधीन ये अपीलें सरकारों द्वारा नाम निर्देशित वरिष्ट लोक सेवकों द्वारा निपटाई जाती हैं। इस समय अपील न तो किसी न्यायिक निकाय को (आन्ध्र प्रदेश जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974 के अधीन के सिवाय) की जाती है और न ही पर्यावरण के क्षेत्र में किसी विशेषज्ञ को।

सर्वप्रथम, जब राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण, 1995 पारित हुआ था, संसद ने सोचा था कि अधिकरण में वरिष्ठ न्यायालय का एक सदस्य अवश्य होना चाहिए। इसी प्रकार, 1997 में, जब राष्ट्रीय पर्यावरण अपील प्राधिकरण गठित किया गया था, प्राधिकरण उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश को तथा वैज्ञानिक अनुभव आदि रखने वाले सदस्यों को लेकर गठित किया जाना था। परन्तु ये अधिकरण अब कार्यशील नहीं है।

हमारे विचार में, (क) जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974, (ख) वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम 1981, और (ग) पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के अधीन बनाए गए विभिन्न नियमों के अधीन गठित अपील प्राधिकरण को इस समय प्रदान की गई शक्तियां प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालय को प्राप्त होंनी चाहिए जो (प्रत्येक राज्य में या प्रत्येक राज्य समूह में) तीन न्यायिक सदस्यों से (क) उच्च न्यायालय में सेवारत या सेवानिवृत्त न्यायाधीश, या (ख) बार के अनुभवी सदस्य (20 वर्ष से अन्यून कार्यकाल) से मिलकर गाठित होगा। प्रत्येक पर्यावरण न्यायालय में इन तीनों न्यायिक सदस्यों की सहायता के लिए तीन पर्यावरण विशेषज्ञ होंगे (जिन्हें कमिश्नर कहा जाएगा)। एक से अधिक राज्यों के लिए एक पर्यावरण न्यायालय का होना अनुज्ञेय होगा। संघ राज्यक्षेत्र अपने पडौसी राज्य के पर्यावरण न्यायालय का लाभ प्राप्त कर सकेंगे। दिल्ली में एक पृथक न्यायालय हो सकेगा।

#### अपीलीय अधिकारिता

जैसाकि पीछे बताया जा चुका है, अब यह प्रस्ताव किया गया है कि प्रत्येक राज्य में (या राज्यों के एक समूह के लिए) एक पर्यावरण न्यायालय होगा जिसे अपीलीय अधिकारिता प्राप्त होगी। इसे वह अपीलीय अधिकारिता प्राप्त होगी जिसका इस समय, विशेष अधिनियमों के अधीन, सरकार के अधिकारियों द्वारा प्रयोग किया जा रहा है। जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 और वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 तथा पर्यावरण (संरक्षण) अधिनिमय, 1986 के अधीन बनाए गए नियमों के अधीन लम्बित अपील प्रत्येक राज्य में प्रस्तावित पर्यावरण अधिकरण को हस्तांतरित कर दी जाएंगी और भविष्य में सभी अपील उक्त न्यायालय में दायर की जाएंगी। जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनिमय, 1974 की धारा 28 और वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 की धारा 31, जैसाकि पहले बताया जा चुका है, में यह उपबंध करते हुए संशोधन किया जाना चाहिए कि इसके पश्चात प्रस्तावित अधिनियम के अधीन अपील पर्यावरण न्यायालय में की जाएंगी और यह कि लम्बित अपील उक्त न्यायालय को हस्तांतरित समझी जाएंगी। इसी प्रकार, पर्यावरण





(संरक्षण) अधिनियम, 1986 में इस आशय का संशोधन किया जाना चाहिए कि इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों के अन्तर्गत विभिन्न प्राधिकारियों द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध सभी अपील प्रत्येक राज्य (या राज्यों के समूह) के स्तर पर संबंधित पर्यावरण न्यायालय में की जाएंगी और यह कि उक्त नियमों के अधीन गठित अपीलीय प्राधिकारियों के समक्ष लम्बित अपील पर्यावरण न्यायालय को हस्तांतरित समझी जाएंगी।

प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालय अधिनियम में इस आशय का उपबंध भी करना होगा जो केन्द्रीय सरकार को समय-समय पर इस आशय की अधिसूचना जारी करने का अधिकार देगा कि किसी अन्य केन्द्रीय अधिनियम के अधीन पारित आदेशों के संबंध में पर्यावरण न्यायालय अपीलीय प्राधिकरण होगा और राज्य सरकारों को भी केन्द्रीय सरकार की सहमति से, समय-समय पर इस आशय की अधिसूचना जारी करने का अधिकार देगा कि राज्य के अन्य अधिनियमों के प्रयोजन के लिए पर्यावरण न्यायालय ही अपीलीय न्यायालय होगा।

राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995 का आशय परिसंकटमय पदार्थों से आहत व्यक्तियों को प्रतिकर का संदाय करने के आदेश पारित करने से था और हमारा प्रस्ताव है कि राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण द्वारा क्षति के लिए निश्चित दायित्व के आधार पर क्षति के लिए मंजूर की जाने वाली राहत ऐसी राहत होनी चाहिए जो प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालय द्वारा मंजूर की जाए। इसके लिए राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995 को निरसित करने की आवश्यकता होगी और उन उपबंधों को प्रस्तावित अधिनियम में लाना होगा।

यह प्रस्ताव भी किया गया है कि राष्ट्रीय पर्यावरण अपीलीय प्राधिकरण अधिनियम, 1997 के अधीन पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के अधीन सुरक्षोपायों का उल्लंघन करने के बारे में, जो राहत पर्यावरण अपीलीय प्राधिकरण द्वारा दी जा सकती थी वह अब प्रस्तावित न्यायालय द्वारा दी जानी चाहिए और अधिनियम की धारा 11 में अवधारित अपीलीय शक्तियां अब प्रस्तावित न्यायालय को दी जानी चाहिए। इसके लिए राष्ट्रीय पर्यावरण अपीलीय प्राधिकरण अधिनियम, 1997 का निरसन करना होगा और उन उपबंधों को प्रस्तावित अधिनियम में लाना होगा।

हमारा यह भी विचार है कि लोक दायित्व बीमा अधिनियम 1991 (जो किसी परिसंकटमय पदार्थ के कारण किसी व्यक्ति या सम्पत्ति को होने वाली क्षति के लिए संदेय प्रतिकर के बारे में है) के अधीन कलक्टर के अधिनिर्णय के विरूद्ध अपील प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालय को की जाएगी। धारा 8 में यह अवधारित किया गया है कि धारा 7 के अधीन संदेय या संदत्त राशि के किसी अन्य विधि के अधीन प्रतिकर के संदेय राशि में से घट्य दिया जाएगा।

प्रस्तावित न्यायालय, अपीलों के अनिर्णित रहते, अन्तरिम और एकपक्षीय आदेशों सहित, अंतवर्ती आदेश पारित कर सकेगा।

प्रस्तावित न्यायालय द्वारा अपील, 500 रुपये निश्चित न्यायालय फीस की अदायगी पर ही स्वीकार की जाएगी।

#### मूल अधिकारिता

प्रस्तावित न्यायालय को पर्यावरण विवादों के बारे में सिविल न्यायालय की समस्त शक्तियों के साथ-साथ मूल अधिकारिता प्राप्त होगी। यह (राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995 के अधीन परिसंकटमय पदार्थों के प्रयोग के कारण हुई क्षति के मामले में मूल अधिकारिता में अवधारित क्षतियों के अतिरिक्त) वे सभी राहत मंजूर कर सकेगा जो, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन या विशिष्ट राहत अधिनियम जैसी अन्य विधियों के अधीन घोषणाओं, लोक प्राधिकारियों या राज्य के आदेशों को अपास्त करके, स्थायी व्यादेशों आज्ञापक व्यादेशों, सम्पत्ति के प्रबंधन, क्षतियों या प्रतिकर, कब्जे आदि के लिए रिसीवर नियुक्त करने सहित, कोई सिविल न्यायालय मंजूर कर सकता है। न्यायालय में मूल याचिका दायर की जा सकेंगी। प्रस्तावित न्यायालय को सभी अंतवर्ती आदेश, अन्तरिम तथा अन्तिम दोनों प्रकार के, देने की शक्ति प्राप्त होगी-प्रस्तावित न्यायालय में दायर की जाने वाली मूल याचिका के लिए 1000रु० निश्चित न्यायालय शुल्क देय होगा। यदि तुच्छ या परेशान करने वाली मूल याचिका दायर की जाती हैं तो न्यायालय को निदर्श खर्चे अधिनिर्णित करने की शक्ति प्राप्त होगी।

पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा 2(क) में दी गई 'पर्यावरण' की निम्नलिखित परिभाषा को प्रस्तावित अधिनियम में सम्मिलित किया जा सकेगा:

"पर्यावरण" के अन्तर्गत जल, वायु और भूमि है और वह अंतरसंबंध है जो जल, वायु और भूमि तथा मानवों, अन्य जीवित प्राणियों, पादपों और सूक्ष्मजीव और सम्पत्ति के बीच विद्यमान है।"

पर्यावरण प्रदूषण को परिभाषित करने के लिए 1986 के अधिनियम की धारा 2ग, (ख) (ग) की भांति उपबंध किया जा सकेगा।

जहां तक न्यायालय की अधिकारिता का संबंध है, यह उपबंध किया जाना चाहिए कि निम्नलिखित के बारे में न्यायालय की अधिकारिता होगी:

(क) सुरक्षित पेय जल पाने के अधिकार तथा ऐसे पर्यावरण के अधिकार का संरक्षण जो किसी को स्वास्थ्य और सुखी जीवन यापन के लिए हानिकारक न हो; और

(ख) पर्यावरण को वर्तमान और भावी पीढ़ियों के लाभार्थ संरक्षित रखना ताकि–

(i) पर्यावरण प्रदूषण और पारिस्थितिकीय अवनति को रोका जा सके;

(ii) परिरक्षण को प्रोत्साहन दिया जा सके; और

(iii) न्यायोचित आर्थिक और सामाजिक विकास को प्रोत्साहन देते हुए पारिस्थितिकीय अविरत और प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग उपलब्ध किया जा सके।

उपर्युक्त (प्रस्तावित) उपबंध के साथ इस आशय का एक स्पष्टीकरण जोड़ना होगा कि अधिकारिता में सम्मिलित होगा–

(क) प्राकृतिक पर्यावरण, वनों, वन्यजीवों, समुद्र, झीलों, नदियों, झरनों, देश के पशुओं और वनस्पतियों का संरक्षण;

(ख) भूमि के प्राकृतिक संसाधनों का परिरक्षण;

(ग) जल, वायु और शोर प्रदूषण सहित पर्यावरण प्रदूषण का निवारण, उपशमन और नियंत्रण;

(घ) भारत के संविधान या तत्समय प्रवृत किसी अन्य विधि के अधीन पर्यावरण या प्रदूषण से संबंधित किसी विधिक या संवैधानिक अधिकार का प्रवर्तन; और

(ङ) ऐसे स्मारकों और स्थानों, कलात्मक या ऐतिहासिक अभिरूचि वाली वस्तुओं का संरक्षण जो संसद द्वारा विधि बनाकर राष्ट्रीय महत्व की घोषित की जाएं।

### साधारण सिविल न्यायालयों की अधिकारिता और विनिश्चयों में विरोध

हम पहले ही कह चुके हैं कि पर्यावरण संबंधित विवादों के निपटारे के लिए सिविल न्यायालयों की अधिकारिता को समाप्त नहीं कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, जैसीकि इस समय व्यवस्था है, यदि किसी पड़ौसी के मकान की चिमनी से प्रदूषित वायु निकल रही है या किसी के मकान की भूमि से बहने वाली छोटी मालवाही नाली से किसी पड़ौसी के मकान या भूमि में प्रदूषण फैल रहा है तो, गांवों के पक्षकार निकटतम मुंसिफ के न्यायालय में जाते हैं जहां इन ग्रामीणों का पहुंचना सुगम हैं। यदि हम इन न्यायालयों की अधिकारिता को समाप्त कर देंगे तो ग्रामीणों से यह आशा नहीं की जा सकेगी कि वे प्रत्येक स्थगन और प्रतिवाद के लिए सीधे पर्यावरण न्यायालय में जाएं। (हो सकता है यदि अधिक लोग प्रभावित हैं तो वे मामले को लेकर पर्यावरण न्यायालय में जा सकें चाहे यह किसी सुदूर स्थान पर ही क्यों न हो)। वास्तव में, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड में, साधारण न्यायालयों की अधिकारिता को समाप्त नहीं किया गया है। यू.के. में भी ऐसे ही प्रस्ताव हैं। हम यहां केवल विशेष न्यायालयों का उपभोक्ता फोरम की तरह के उपबंध करने का प्रस्ताव कर रहे हैं – जिनमें पक्षकारों को पहुंचना सुगम हो, यदि वे त्वरित या विशेषज्ञ न्यायालय में जाना चाहते हों। वास्तव में, उपभोक्ता (संरक्षण) अधिनियम, 1986 में भी यह कहा गया है कि यह अधिनियम साधारण विधियों में उपलब्ध उपचारों के अतिरिक्त अधिनियमित किया गया है।

परन्तु अन्तिमता के प्रश्न पर यह उपबंध करना होगा कि यदि किसी सिविल न्यायालय में (या पर्यावरण न्यायालय में) अन्तिम न्याय निर्णय हो गया है तो यह पक्षकारों के लिए बाध्यकारी होगा और पक्षकारों को ऐसे पर्यावरण न्यायालय में (या सिविल न्यायालय में) जाने की अनुमति नहीं होगी जहां वे अभी तक नहीं गए हैं।



यदि किसी विषय पर पर्यावरण न्यायालय में कोई विवाद लम्बित है और बाद में सिविल न्यायालय में ऐसा ही कोई अन्य मामला दायर किया जाता है, या विपर्ययेन, वहां पक्षकार न्यायालय से, जहां मामला बाद में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 10 के सिद्धान्त पर ही आवेदन देकर दायर किया गया है, बाद वाली कार्यवाहियों के लिए स्थगन आदेश प्राप्त कर सकेंगे।

### साक्ष्य और सुलह/मध्यस्थता के नियम

प्रस्तावित न्यायालय साक्ष्य के नियमों से बाध्य नहीं होगा और वह अपनी प्रक्रिया निर्धारित कर सकेगा। वह मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्य ले सकेगा और विशेषज्ञों से परामर्श कर सकेगा। न्यायिक सदस्य और कमिश्नर, यदि आवश्यक समझें, मौके पर जाकर निरीक्षण कर सकेंगे और मौखिक साक्ष्य अभिलिखित कर सकेंगे।

प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालय को कार्यवाही के किसी भी स्तर पर सुलह और मध्यस्थता को प्रोत्साहन देना चाहिए – चाहे मूल याचिका हो या अपील।

### पर्यावरणीय सिद्धान्तों का लागू किया जाना

स्पष्टत:, प्रस्तावित न्यायालय को पर्यावरणीय विधि के मूलभूत सिद्धान्तों को लागू करना होगा जैसाकि अध्याय आठ में कहा गया है।

विधि में इस आशय का उल्लेख होना चाहिए कि जहां तक परिसंकटमय पदार्थों का संबंध है, पर्यावरण न्यायालय को पूर्वावधानी के सिद्धात, 'पौल्यूटर पेयज सिद्धान्त' साबित करने के नए भार का सिद्धान्त, निवारण सिद्धान्त, निश्चित दायित्व, जन-विश्वास के सिद्धान्त, अनतरपीढ़ी साम्या की धारण और अविरत विकास की धारणा को ध्यान में रखना चाहिए।

### राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995 और राष्ट्रीय पर्यावरण अपील प्राधिकरण अधिनियम, 1997 का निरसन

राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995 और राष्ट्रीय पर्यावरण अपील प्राधिकरण अधिनियम, 1997 को निरसित किया जाना चाहिए और इन अधिकरणों की अधिकारिता और शक्तियों को प्रस्तावित अधिनियम में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

### जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974, वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 तथा पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 का संशोधन।

वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 की धारा 31 में पर्यावरण न्यायालय को अपील करने का उपबंध करते हुए उपयुक्त संशोधन किया जाना चाहिए और पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 में इस आशय की एक पृथक धारा पुर:स्थापित की जानी चाहिए कि अपील प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालय में की जाएगी।

जहां तक जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 का संबंध है, प्रस्तावित अधिनियम में एक अतिरिक्त उपबंध किया जाना चाहिए कि जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 में किसी बात के होते हुए भी, अपील प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालय में की जाएंगी, केवल उन राज्यों में ही नहीं जहां यह अधिनियम प्रवर्तन में है अपितु उन राज्यों में भी जिनमें भविष्य में इसे लागू किया जा सकेगा।

### योजना बनाने तथा उन पर निगरानी रखने की शक्ति

हमारे विचार में पर्यावरण न्यायालय को योजनाएं बनाने और उन पर निगरानी रखने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए तथा उसे इन योजनाओं को समय-समय पर उपांतरित करने की भी शक्ति प्राप्त होनी चाहिए। यदि विभिन्न मामलों में उठी समस्याओं को और उनके बारे में उच्चतम न्यायालय द्वारा जारी किए गए मार्गनिर्देशों को देखा जाए तो ज्ञात होता है कि इन न्यायालयों में इस प्रकार की शक्ति का निहित होना आवश्यक है। वायु और जल प्रदूषण का मामला लीजिए, प्रदूषण, जो किसी क्षेत्र में स्थापित किसी उद्योग या ऐसे ही उद्योगों के किसी एक वर्ग द्वारा फैलाया जाता तो इन उद्योगों को स्थानांतरित करने, उद्योगों को अस्थायी रूप से बंद करने और कर्मचारियों को उनके दो-तीन वर्ष के वेतन देने के लिए निदेश जारी करने होंगे, नए स्थानों पर जल और बिजली जैसे आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए स्थानीय प्राधिकारियों को निदेश देना होगा। इसके साथ-साथ उद्योगों को भी यह

निदेश देना होगा कि वे अपशिष्ट संयत्र आदि स्थापित करें। बहुत से प्रश्न एक साथ उठते हैं जिनका संबंध केन्द्रीय सरकार/राज्य सरकार या स्थानीय प्रशासन के विभिन्न विभागों से होता है। पर्यावरण न्यायालय उपर्युक्त वर्णित जैसी गम्भीर समस्याओं का 'पर्यावरणीय समाधान' उपलब्ध कराने में सक्षम होना चाहिए और जब व्यापक योजनाएं बनाने की शक्ति उसे प्राप्त नहीं होगी जिसमें विभिन्न विभागों को निदेश देना अन्तर्ग्रस्त होगा तब तक समाधान कार्यान्वित नहीं किया जा सकेगा। ऐसी व्यापक अधिकारिता का प्रयोग इस समय उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों द्वारा किया जा रहा है। हमारे विचार में, प्रस्तावित न्यायालय को भी ऐसी ही शक्तियां प्राप्त होनी चाहिए। जब तक ये योजनाएं सफलतापूर्वक कार्यान्वित नहीं हो जातीं तब तक उन्हें उन पर निगरानी रखनी होगी और यदि आवश्यक हो तो इन्हें समय-समय पर उपांतरित भी करना होगा।

### आदेशों का निष्पादन और अवमानना की प्रक्रिया

राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995 में यह अवधारित किया गया था कि जो कोई, अधिकरण द्वारा किए गए किसी आदेश का अनुपालन करने में असफल रहेगा वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो 10 लाख रुपए तक का हो सकेगा, या दोनों से, दंडनीय होगा। (हमें ज्ञात है कि राष्ट्रीय अपील प्राधिकरण अधिनियम, 1997 की धारा 19 में सात वर्ष तक के कारावास और एक लाख रुपए तक जुर्माना या दोनों का प्रावधान किया गया है) यह बात स्पष्ट है कि दंड देने का अधिनिर्णय सामान्य दांडिक न्यायालयों द्वारा दिया जा सकेगा जो ऐसा दंड देने के लिए सक्षम होंगे। इस प्रक्रिया में काफी लम्बा समय लग सकता है।

जहां तक उसके आदेशों के निष्पादन का संबंध है, प्रस्तावित न्यायालय को वे सभी शक्तियां प्राप्त होनी चाहिए जो आदेशों के निष्पादन के लिए किसी सिविल न्यायालय को प्राप्त है और उसे अवमानना की अधिकारिता का प्रयोग करने का भी अधिकार होना चाहिए। इन न्यायालयों को ऐसी शक्तियां प्रदान करने में कोई कठिनाई नहीं है। आयोग का विचार है कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि बड़े उद्योगों के मामले, जो पर्यावरण को (या हमारे झरनों, झीलों और नदियों या वायु को) प्रदूषित करते हैं, न्यायालय के समक्ष आते हैं, न्यायालय में अवमानना की शक्तियां निहित करने की आवश्यकता है ताकि वह अपने आदेशों को संक्षिप्त कार्यवाहियों के द्वारा, निष्पादन के लिए दीर्घकालिक कार्यवाहियों या दांडिक विधि की कार्यवाहियां अपनाने के बजाय प्रभावी रुप से कार्यान्वित करा सकें। संसद द्वारा इन प्रस्तावित न्यायालयों को ऐसी शक्तियां अनुसूची-सात की सूची-तीन की प्रविष्टि 14 के अधीन विधि बनाकर दी जा सकती है।

### समुचित राहत प्रदान करने की शक्ति

सामान्यतया, सिविल न्यायालय ऐसी राहत नहीं देते जिनके लिए अनुरोध नहीं किया जाता है। परन्तु रिट न्यायालयों की भांति, पर्यावरण न्यायालयों को भी किसी भी राहत को इस प्रकार से परिवर्तित करने का अधिकार होना चाहिए जो मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुरुप युक्ति संगत हो।

अत: हमारा विचार है कि मूल याचिकाओं में या अपीलों में, प्रस्तावित न्यायालयों को ऐसी कोई अन्य राहत प्रदान करने की शक्ति होनी चाहिए जिसके लिए अनुरोध नहीं किया गया है और जो मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के लिए उपयुक्त हो।

### सुने जाने का अधिकार

जहां तक प्रस्तावित न्यायालय के समक्ष मूल याचिकाओं में सुने जाने के अधिकार का संबंध है, यह इतना ही विस्तृत होना जितना कि पर्यावरणीय मामलों में रिट अधिकारिता में आज उच्च न्यायालयों/उच्चतम न्यायालय को प्राप्त है। आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड में भी यही स्थिति है। कोई भी व्यक्ति या संगठन जो विषय में अभिरूचि रखता है या जनहित में न्यायालय में जा सकेगा। जैसाकि पहले बताया जा चुका है, तुच्छ या परेशान करने वाले वादों में न्यायालय को निदर्श खर्चों का आदेश पारित करने की अनुज्ञा होनी चाहिए।

### न्याय मित्र

व्यक्तियों/संगठनों द्वारा हस्तक्षेप किए जाने का उपबंध होना चाहिए और न्यायालय को न्याय मित्र नियुक्त करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए।



### न्यायिक सदस्यों के लिए अर्हताएं

जहां तक ऐसे व्यक्तियों का संबंध है जिनसे प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालय गठित होगा, जैसाकि पीछे बताया जा चुका है, तीन न्यायिक सदस्य होंगे जिनको सहायता के लिए तीन विशेषज्ञ कमिश्नर होंगे। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि प्रस्तावित न्यायालय को सिविल न्यायालय की शक्तियां, मूल तथा अपीलीय, प्राप्त होंगी, हमारा विचार है कि न्यायालय में केवल न्यायपालिका या बार से लिए गए न्यायिक सदस्य होने चाहिए। यहां हम किसी प्रशासनिक या कर अधिकरण के गठन के प्रश्न पर विचार नहीं कर रहे है जिनकी स्थापना सेवा संबंधी या कर संबंधी विवादों के समाधान के लिए की जाती हैं। यहां हम एक ऐसे न्यायालय के गठन पर विचार कर रहे हैं जो पर्यावरणीय मामलों में अपनी मूल अधिकारिता में और अपीलीय अधिकारिता में एक नियमित सिविल न्यायालय की शक्तियों का उपयोग कर रहा है। न्यायिक या विधि विशेषज्ञ ज्ञान न रखने वाले को नियुक्त करना अनुज्ञेय या युक्तिसंगत नहीं होगा।

अर्हता से संबंधित उपबंध निम्नलिखित रूप में होने चाहिए:

"(1) कोई व्यक्ति चेयरमैन और सदस्यों के रूप में तभी नियुक्त जा सकेगा जब निम्नलिखित अर्हता रखता हो-

(क) उच्च न्यायालय में न्यायाधीश है या रहा है;

(ख) उच्च न्यायालय में या निरन्तर दो या दो से अधिक उच्च न्यायालयों में अधिवक्ता, जिसका कार्यकाल 20 वर्ष से अन्यून है।

स्पष्टीकरण: उन व्यक्तियों को प्राथमिकता दी जाएगी जिन्हें न्यायाधीशों या अधिवक्ताओं के रूप में पर्यावरणीय विषयों में अनुभव प्राप्त हैं'

हमने तीन न्यायाधीशों वाले न्यायालय का प्रस्ताव किया है, क्योंकि उसके समक्ष बहुत जटिल और महत्वपूर्ण प्रश्न आएंगे (जिनसे समस्त राज्य, जिसमें प्रस्तावित न्यायालय स्थित है, प्रभावित होगा) और हमने महसूस किया है कि एकल सदस्यी न्यायालय इतने महत्वपूर्ण और गम्भीर प्रश्नों के समाधान के लिए पर्याप्त नहीं होगा। इस समय, उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में ऐसे मामले दो या दो से अधिक न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा सुने जाते हैं। इसलिए, कम से कम दो न्यायिक सदस्य तो होने ही चाहिए परन्तु, ऐसी स्थिति से निपटने के लिए जहां मतभेद हो, तीन न्यायिक सदस्यों का होना आवश्यक है। गणपूर्ति दो न्यायिक सदस्यों से होनी चाहिए।

न्यायालय को तकनीकी/वैज्ञानिक व्यक्तियों, जिन्हें कमिश्नर कहा जाएगा, के सांविधिक पैनल की सहायता प्राप्त होनी चाहिए जैसाकि आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड में है। पर्यावरण न्यायालय के समक्ष आने वाले विभिन्न विषयक मामलों को ध्यान में रखते हुए ऐसे तीन कमिश्नरों का एक पैनल होना आवश्यक है। उनकी भूमिका सलाहकार की होगी और सुनवाईयों के दौरान उन्हें न्यायालय में उपस्थित रहना होगा। वे न्यायालय के सदस्य नहीं है परन्तु सांविधिक पैनल के सदस्य हैं जिनसे वैज्ञानिक या प्रौद्योगिकीय विषयों के विश्लेषण और निर्धारण में न्यायालय को स्वतंत्र रूप से परामर्श देने और सहायता करने की अपेक्षा की जाती है। कम से कम एक कमिश्नर को न्यायालय में सदैव उपस्थित रहना होगा। यदि न्यायालय महसूस करे कि पैनल के कमिश्नरों के अतिरिक्त किसी अन्य शाखा के अन्य विशेषज्ञ से पूछताछ किए जाने की आवश्यकता है तो न्यायालय स्वयं ही या पैनल के कमिश्नरों के परामर्श से मामले को विचाराधीन विशिष्ट क्षेत्र में अन्य विशेषज्ञ/विशेषज्ञों की राय जानने के लिए निर्दिष्ट कर सकेगा।

### कमिश्नरों की अर्हताएं

तीन कमिश्नरों के पैनल में, जो परामर्शदात्री है और प्रत्येक न्यायालय से सम्बद्ध है, सदस्यों के लिए, हमारे विचार से, निम्नलिखित अर्हताएं होनी चाहिए। प्रत्येक कमिश्नर को-

"(1) पर्यावरण विज्ञान में डिग्री प्राप्त होने के साथ उसे पर्यावरण वैज्ञानिक या इंजीनियर के रूप में कम से कम पांच वर्ष का अनुभव प्राप्त होना चाहिए; या

(2) पर्यावरण से संबंधित समस्याओं के विभिन्न पहलुओं के बारे में विशेष रूप से पर्यावरण संरक्षण और पर्यावरण संघात निर्धारण सहित पर्यावरणीय समस्याओं के वैज्ञानिक और तकनीकी पहलुओं के बारे में कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त ज्ञान और अनुभव प्राप्त होना चाहिए।'

हम एन.एस.डब्ल्यू लैण्ड एण्ड एनवायरमेंट एक्ट, 1979 की धारा 12 की भांति, थोड़े उपांतरण के साथ निम्नलिखित रूप में एक स्पष्टीकरण अन्त: स्थापित करने की सिफारिश करते हैं:

> 'कमिश्नरों की नियुक्ति में, जहां तक व्यवहार्य हो, यह सुनिश्चित कराया जाना चाहिए कि वे ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें उन क्षेत्रों में, जिनके बारे में पर्यावरण या पारिस्थितिकीय मामले उठते हैं, अर्हताएं और अनुभव प्राप्त हैं।'

**दांडिक और न्यायिक पुनरीक्षा की अधिकारिता से वंचित रखा जाना**

हमने, आज उच्च न्यायालयों द्वारा प्रयोग की जा रही दांडिक अपीलीय अधिकारिता और न्यायिक पुनरीक्षण अधिकारिता को प्रस्तावित न्यायालयों के कार्यक्षेत्र से जानबूझकर बाहर रखा है। दंड संहिता के अधीन या जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 या वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 और पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 जैसे विशेष अधिनियम के अधीन अपराधों के या पर्यावरण से संबंधित किसी अन्य अपराध के बारे में पक्षकारों को या राज्य को सामान्य दंड न्यायालयों में या दांडिक अपीलीय न्यायालय में, व्यवहारिक प्रक्रियात्मक विधि के अनुसार जिसकी अधिकारिता है, जाना पड़ता है। हमने इस विषय पर विस्तार से विचार किया है और महसूस किया है कि शक्ति के सिद्धान्त स्वरूप, सूची-I (अनुसूची-सात) की प्रविष्टि 13 के साथ पठित अनुच्छेद 253 के अनुसार विचारण न्यायलयों से दांडिक अपील/पुनरीक्षण, जहां तक ये वर्तमान में उच्च न्यायालयों में दायर की जाती हैं-चाहे दोषसिद्धि का मामला हो या दोषमुक्ति का-पर्यावरण न्यायालय को अन्तरित की जा सकेंगी। इस संदर्भ में, सूची-I की प्रविष्टि 13, 95 और सूची-III की प्रविष्टि 1, 2, 11क और 46 संगत हैं।

परन्तु, हमने कोई ऐसी विशेष विधि नहीं देखी है (टाडा या पोटा के सिवाय) जहां उच्च न्यायालय की अपीलीय अधिकारिता उच्च न्यायालय से ले ली गई हो और उस राज्य स्तर पर किसी अन्य न्यायालय में, जो सेवानिवृत्त न्यायाधीशों से गठित हुआ है, निहित कर दी गई हो। दांडिक अपीलीय अधिकारिता राज्य स्तर पर किसी अन्य न्यायालय को हस्तांतरित करने के लिए विधि बनाने हेतु संसद की क्षमता विषयक अनावश्यक मुकदमों से बचने के लिए हमने वर्तमान दांडिक अपीलीय प्रक्रिया में हस्तक्षेप न करने का निर्णय किया है।

इसी प्रकार, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालयों द्वारा प्रयोग की जा रही न्यायिक पुनरीक्षण की शक्तियों को पर्यावरण न्यायालयों को सौंपना हमने उचित नहीं समझा है। हमने महसूस किया है कि पर्यावरण न्यायालयों में सिविल न्यायालयों द्वारा प्रयोगनीय मूल सिविल अधिकारिता निहित करना ही पर्याप्त है। यदि हम अनुच्छेद 226 के अधीन प्रदत्त न्यायिक पुनरीक्षा की शक्तियां निहित करते हैं तो आदेशों को उच्च न्यायालयों की रिट अधिकारिता के अध्यधीन रखने की आवश्यकता होगी जैसाकि एल. चन्द्रकुमार बनाम यूनियन ऑफ इंडिया: 1997(3) एस सी सी 261, मामले में अभिनिर्धारित किया गया है।

नि:संदेह, पर्यावरण न्यायालय द्वारा सिविल न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग किया जाना या सिविल अधिकारिता में अपीलीय न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग किया जाना तकनीकी रूप से उच्च न्यायालय के रिट अधिकारिता के अध्यधीन हो सकेगा परन्तु क्योंकि हम उच्चतम न्यायालय में अपील करने का उपबंध कर रहे हैं इसलिए, उच्च न्यायालय इस आधार पर हस्तक्षेप करने से इंकार कर सकेंगे कि विधि और तथ्य के विषय में उच्चतम न्यायालय में अपील करने का प्रभावी वैकल्पिक उपचार उपलब्ध है, जैसाकि इस अध्याय में आगे स्पष्ट किया गया है।

**उच्चतम न्यायालय को अपील**

हमारा यह भी मत है कि संसद द्वारा, अनुच्छेद 253 के साथ पठित सूची-I की प्रविष्टि 13 या सूची-I की प्रविष्टि 95 या सूची-III की प्रविष्टि 11क और 46 के अधीन, सीधे उच्चतम न्यायालय में सांविधिक अपील किए जाने का उपबंध किया जा सकेगा।

**पारिश्रमिक**

सदस्यों और कमिश्नरों के पारिश्रमिक वे होंगे जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित किए जाएं।



**नियुक्ति की पद्धति तथा अन्य विषय**

न्यायिक सदस्यों की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा, राज्य सरकार, संबंधित राज्य/संघ राज्य क्षेत्र के मुख्य न्यायाधीश और भारत के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से की जाएगी। कमिश्नरों की नियुक्ति संबंधित राज्य सरकार/संघ राज्य क्षेत्र प्रशासन द्वारा, संबंधित राज्य के मुख्य न्यायाधीश और प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालय के चेयरमैन के परामर्श से की जाएगी।

कोई कमिश्नर, जो प्रत्यक्ष या परोक्ष धन संबंधी कोई हित रखता है और विषय से या विवाद के किसी पक्षकार से संबंधित है, विवाद के संबंध में कोई रिपोर्ट नहीं दे सकेगा। प्रत्येक कमिश्नर न्यायालय के चेयरमैन को सूचित करेगा कि उसका कोई संबंध है अथवा नहीं।

तीनों सदस्यों का (अर्थात उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त तीन न्यायाधीश) और पैनल के तीनों कमिश्नरों का कार्यकाल 5 वर्ष होना चाहिए।

न्यायालय में एक रजिस्ट्रार और ऐसे अन्य अधिकारी और कर्मचारी होंगे जो भारत के मुख्य न्यायाधीश के साथ परामर्श करके केन्द्रीय सरकार द्वारा, नियम बनाकर निश्चित किए जाएं।

सदस्यों के (अर्थात उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त तीन न्यायाधीश) पदत्याग और हटाए जाने की प्रक्रिया वही होगी जो राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995 की धारा 13 में दी गई है।

जहां तक कमिश्नरों का संबंध है, पदत्याग के लिए परन्तुक, 1995 के उपर्युक्त अधिनियम की धारा 13(1) की भांति ही होगा। जहां तक हटाए जाने का संबंध है, यह उन नियमों पर आधारित होगा जो सरकार द्वारा विहित किए जाएंगे परन्तु जांच उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश द्वारा ही की जानी चाहिए।

जहां तक कार्यकाल की समाप्ति के पश्चात की स्थिति, वित्तीय और प्रशासनिक शक्तियों और न्यायालय के कर्मचारियों का संबंध है, राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995 की धारा 15, 16 और 17 जैसे अन्य उपबंध अधिनियमित किए जा सकते हैं।

अपराधों, संरक्षण आदि पर ध्यान देने के लिए 1995 के उक्त अधिनियम की धारा 25, 26, 27, 28, 29 और 31 जैसे उपबंध जोड़े जा सकते हैं। न्यायिक सदस्यों और कमिश्नरों को सदाशयपूर्वक किए गए कार्यों के लिए विधिक कार्यवाही के विरुद्ध संरक्षण प्राप्त होना चाहिए।

न्यायिक सदस्यों को उस राज्य के राज्यपाल द्वारा या उसके प्रतिनिधि द्वारा, जिसमें पर्यावरण न्यायालय स्थित है, पद की शपथ दिलायी जाएगी। यदि न्यायालय केवल संघ राज्यक्षेत्र के लिए स्थापित किया गया है तब ऐसी शपथ उपराज्यपाल या उसके प्रतिनिधि द्वारा दिलायी जाएगी।

न्यायिक सदस्यों या कमिश्नरों द्वारा त्यागपत्र केन्द्रीय सरकार को प्रस्तुत किए जा सकेंगे। कमिश्नर त्यागपत्र राज्य सरकार को भी दे सकते हैं।

**उच्चतम न्यायालय को की जाने वाली अपील उच्च न्यायालय को सामान्यतया 'वैकल्पिक प्रभावी उपचार' के सिद्धान्त पर हस्तक्षेप न करने के लिए प्रेरित करेगी।**

जैसाकि पीछे बताया जा चुका है, तथ्य तथा विधि दोनों विषयों पर, भारत के उच्चतम न्यायालय को सांविधिक अपील करने का प्रस्ताव उच्च न्यायालयों द्वारा सामान्यतया पर्यावरण न्यायालय के आदेशों के बारे में हस्तक्षेप न किए जाने का एक महत्वपूर्ण कारण होगा। पीछे निर्दिष्ट किया गया एल. चन्द्र कुमार बनाम भारत संघ: ए.आई.आर. 1997 एस सी 1125, मामला भिन्न है क्योंकि वहां संविधान के अनुच्छेद 323क के अधीन बनाई गई विधि (प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम) में अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालयों की न्यायिक पुनरीक्षा की शक्ति को एक सांविधिक अधिकरण को हस्तांतरित करने का उपबंध किया गया है और उच्च न्यायालय को उसकी हस्तक्षेप की शक्ति से वंचित किया गया है। इसके अतिरिक्त, प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम के उपबंधों में उच्चतम न्यायालय में सांविधिक अपील करने की, इस रूप में जैसा कि हम प्रस्ताव कर रहे हैं, व्यवस्था नहीं की गई है। अधिनियम की उपर्युक्त स्कीम के कारण से ही, उच्चतम न्यायालय ने यह महसूस किया कि अनुच्छेद 226, अनुच्छेद 227 के अधीन उच्च न्यायालय को उसकी शक्तियों से, जो संविधान की मूल संरचना की भाग है, वंचित नहीं किया जा सकता और इसलिए, प्रशासनिक अधिकरण के आदेश हमारी खंडपीठ के समक्ष अनुच्छेद 226 के अध्यधीन होंगे। उपर्युक्त निर्णय यहां लागू नहीं होता है क्योंकि हमारा प्रस्ताव उच्च न्यायालय को उनकी न्यायिक

पुनरीक्षा की शक्तियों से, विशिष्ट रूप से या परोक्ष रूप से, वंचित करने का और ऐसी शक्तियों को प्रस्तावित न्यायालयों में निहित करने का नहीं है। पहले तो, प्रस्तावित न्यायालय पर्यावरणीय मामलों में मूल अधिकारिता प्राप्त एक सिविल न्यायालय है और उसे तीन अधिनियमितताओं के अधीन (या अधिसूचित की जाने वाली अन्य अधिनिमितियों के अधीन) लोक प्राधिकरणों द्वारा पारित आदेशों के विरूद्ध अपीलीय अधिकारिता भी प्राप्त है। दूसरे, हम विधि तथा तथ्य के विषयों पर उच्चतम न्यायालय में सांविधिक अपील करने के एक प्रभावी वैकल्पिक उपचार का प्रस्ताव कर रहे हैं। हम जिस न्यायालय का प्रस्ताव कर रहे हैं वह न तो अनुच्छेद 323क के अधीन और न ही अनुच्छेद 323ख के अधीन, अनुच्छेद 323ख में ऐस विशेष अधिकरण गठित करने के लिए निर्दिष्ट विषय-सूची अन्तिम न होने के आधार पर भी, कोई अधिकरण नहीं है।

हम यहां यह उल्लेख कर सकेंगे कि एकाधिकार तथा निर्बन्धात्मक व्यापार प्रक्रिया अधिनियम की धारा 55 में आयोग के आदेशों के विरूद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील करने का उपबंध किया गया है। इसी प्रकार, सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 130 ड और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क और नमक अधिनियम, 1944 की धारा 356 में उच्चतम न्यायालय में अपील करने का उपबंध किया गया है। उपभोक्ता (संरक्षण) अधिनियम, 1986 में जिला फोरम से राज्य फोरम और राज्य फोरम से राष्ट्रीय फोरम में अपील करने का उपबंध है। कतिपय मामलों में, राष्ट्रीय फोरम के निर्णयों के विरूद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की जाती है। वे उच्च न्यायालय, जिनकी क्षेत्रीय अधिकारिता में ये न्यायालय स्थित हैं, सामान्यतया रिट याचिका स्वीकार नहीं करते हैं। इसके अतिरिक्त, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि वे उपभोक्ता फोरम के आदेशों के बारे में, अनुच्छेद 226 या 227 के अधीन, साधारणतया हस्तक्षेप नहीं करेंगे क्योंकि उपभोक्ता (संरक्षण) अधिनियम, 1986 में अपील करने का प्रभावी वैकल्पिक उपचार उपबंधित है। (देखें, अधिनियम के बारे में जे.एम. बरोवालिया की कॉमेंटरी में विनिर्दिष्ट उच्च न्यायालय के निर्णयों की एक लंबी सूची (दूसरा संस्करण, 2000) (पृष्ठ 195 से 206) और दिलीप के. सेठ द्वारा कॉमेंटरी (2001) (पृष्ठ 66 से 69)।

उच्चतम न्यायालय ने, अनेकों मामलों में यह अभिनिर्धारित किया है कि उच्च न्यायालय सामान्यतया हस्तक्षेप नहीं करेगा यदि अपील करने का प्रभावी वैकल्पिक अधिकार विद्यमान है। एस. जगदीशन बनाम अय्या: टीटागढ़ पेपर मिल्स बनाम स्टेट ऑफ उड़ीसा: ए.आई.आर. 1983 एस सी 603।

इसके अतिरिक्त, जब पर्यावरण के मामलों में तथ्य संबंधी गंभीर विवाद उठते हैं, जहां मौखिक तथा विशेषज्ञ साक्ष्य आवश्यक है, वहां उच्च न्यायालय केवल शपथ-पत्रों के आधार पर मामलों का विनिश्चय करने के लिए उपयुक्त नहीं है, जयसिंह बनाम यूनियन ऑफ इंडिया: ए.आई.आर. 1977 एस सी 898, थानसिंह बनाम सूपत: ए.आई.आर. 1964 एस सी 1419।

अत: यह प्रस्ताव किया गया है कि पर्यावरण न्यायालय के आदेशों के विरूद्ध अपील भारत के उच्चतम न्यायालय में की जाएगी। हम यहां अपील करने की वह प्रक्रिया अपना रहे हैं जो राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995 की धारा 24 में अंतर्विष्ट थी। इसके अतिरिक्त, उपभोक्ता (संरक्षण) अधिनियम, एकाधिकार तथा निर्बन्धात्मक व्यापार प्रक्रिया अधिनियम, सीमाशुल्क तथा उत्पादशुल्क अधिनियम, कंपनी अधिनियम तथा अन्य विधियों की स्कीम एकसमान ही है, जहां सीधे उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार दिया गया है। प्रस्तावित अधिनियम के अधीन अपील तथ्य तथा विधि के विषय में होनी चाहिए।

यह, पर्यावरण संरक्षण के संबंध में स्टॉकहोम सम्मेलन, 1972 तथा रियो डी जेनेरो सम्मेलन, 1992 के विनिश्चय को कार्यान्वित करने के प्रयोजन के लिए तथा राष्ट्रीय हित में संविधान के अनुच्छेद 253 के अधीन संसद द्वारा बनाया गया विधान है। इसके अतिरिक्त, न्यायालय केन्द्रीय अधिनियमों के प्रयोजनों के लिए, जल अधिनियम, 1974, वायु अधिनियम, 1981, पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 आदि, अपीलीय निकाय हैं। इसलिए, अतिरिक्त न्यायालयों का उपबंध करना संसद का कर्तव्य है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 247 के अधीन ऐसे न्यायालयों की स्थापना और उनके रख-रखाव पर आने वाली लागत केन्द्रीय सरकार को वहन करनी होगी। अनुच्छेद 247 का पाठ निम्नलिखित है:

> "अनुच्छेद 247. कुछ अतिरिक्त न्यायालयों का उपबंध करने की संसद की शक्ति:- इस अध्याय में किसी बात के होते हुए भी, संसद अपने द्वारा बनाई गई विधियों के या किसी विद्यमान विधि के, जो संघ सूची में प्रगणित के संबंध में है, अधिक अच्छे प्रशासन के लिए अतिरिक्त न्यायालयों की स्थापना का विधि द्वारा उपबंध कर सकेगी।"



ये न्यायालय अनुच्छेद 247 के अन्तिम खंड के पहले भाग के शब्दों के अंतर्गत आते हैं अर्थात "संसद द्वारा बनाई गई विधियों के अच्छे प्रशासन के लिए"। (खंड का दूसरा भाग 26.1.1950 को विद्यमान विधियों से संबंधित है जो सूची-I के विषय के बारे में है)। जैसाकि पीछे कहा जा चुका है, न्यायालय एक से अधिक राज्यों के लिए हो सकेगा। संघ राज्यक्षेत्र अपने पड़ौसी राज्य के न्यायालय का उपयोग कर सकेंगे। दिल्ली के लिए एक पृथक न्यायालय हो सकता है।

अत: हम सिफारिश करते हैं कि प्रत्येक राज्य में (राज्यों के समूह के लिए) पर्यावरण न्यायालय गठित करने के लिए, जिन्हें मूल तथा अपीलीय अधिकारिता प्राप्त हो जैसाकि इस अध्याय में बताया गया है और जिन्हें पर्यावरणीय विषयों पर भी अधिकारिता प्राप्त हो, अनुच्छेद 253 के अधीन संसद द्वारा विधि बनाई जानी चाहिए। इन न्यायालयों में से प्रत्येक न्यायालय में तीन न्यायिक सदस्य होंगे जिन्हें न्यायिक तथा विधिक अनुभव प्राप्त होगा और इनके साथ विशेषज्ञ कमिश्नरों का एक पैनल होगा। इनके निर्णय के विरूद्ध अपील भारत के उच्चतम न्यायालय में की जा सकेगी। न्यायालयों द्वारा इस अध्याय में उल्लिखित प्रक्रिया अपनाई जाएगी।

कर्मचारियों की नियुक्ति करने की शक्ति, नियम बनाने की शक्ति, संसद के सदनों में रखे जाने संबंधी अन्य औपचारिक उपबंध कंपनी अधिनियम, 2002 या प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के हाल में किए गए संशोधनों में अंतर्विष्ट उपबंधों की भांति किए जा सकेंगे।

## अध्याय – दस

## सिफ़ारिशें

पिछले अध्यायों में की गई चर्चा के आधार पर, हम निम्नलिखित सिफारिश करते हैं:

1. पर्यावरण संबंधी विषयों में जटिल वैज्ञानिक और विशिष्ट प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होने की दृष्टि से, पृथक पर्यावरण न्यायालयों की स्थापना की आवश्यकता है जो ऐसे व्यक्तियों से गठित होंगे जिन्हें न्यायिक और विधिक अनुभव प्राप्त होगा और उनकी सहायता के लिए पर्यावरण के क्षेत्र में वैज्ञानिक अर्हता तथा अनुभव रखने वाले व्यक्ति नियुक्त किए जाएंगे।

2. सुगम, शीघ्र और त्वरित न्याय के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संघ सरकार द्वारा प्रत्येक राज्य में ''पर्यावरण न्यायालय'' स्थापित और गठित किया जाना चाहिए। तथापि, छोटे राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों के लिए एक से अधिक राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के लिए एक न्यायालय से उद्देश्य पूरा हो सकेगा।

3.(क) भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची – I की प्रविष्टि 13 के साथ पठित अनुच्छेद 253 में अन्तर्विष्ट उपबंधों की दृष्टि से पर्यावरण न्यायालय स्थापित करने के प्रयोजन से विधि अधिनियमित करने हेतु, क्योंकि स्टॉकहोम में 1972 में तथा रियो डी जेनेरो 1992 में हुए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में, जिनमें भारत ने भी भाग लिया था, पर्यावरण के संरक्षण और सुधार और भूमि के प्राकृतिक संसाधनों के परिरक्षण के बारे में विभिन्न विनिश्चय किए गए थे, संसद को अनन्य अधिकारिता प्राप्त है।

(ख) अनुच्छेद 253 के निम्नलिखित शब्द ''अध्याय के पूर्वगामी उपबंध में किसी बात के होते हुए भी'' संसद को राज्य सूची के अन्तर्गत आने वाले विषयों पर भी विधि बनाने की शक्ति प्रदान करते हैं। अनुच्छेद 253 का अनुच्छेद 245 से 252 पर अध्यारोही प्रभाव है।

(ग) अनुच्छेद 253 में सर्वोपरि खंड की दृष्टि से, संसद अनुच्छेद 253 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए विधि बनाते समय, अनुच्छेद 252(2) में विहित प्रक्रिया का अनुसरण किए बिना ही, अनुच्छेद 252(1) के अधीन अधिनियम बना सकेगी। अतः जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 के उपबंध, जो संसद द्वारा अनुच्छेद 252(1) के अधीन अधिनियमित किए गए थे, संसद द्वारा अनुच्छेद 252(2) के अधीन निर्धारित प्रक्रिया का अनुसरण किए बिना ही, अनुच्छेद 253 के अधीन परवर्ती विधि अधिनियमित करके परिवर्तित किए जा सकते हैं।

4.(क) प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालय में एक अध्यक्ष और कम से कम दो अन्य सदस्य होंगे। अध्यक्ष और अन्य सदस्य या तो उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के सेवानिवृत न्यायाधीश होने चाहिए या ऐसे अधिवक्ता होने चाहिए जिन्हें किसी उच्च न्यायालय में विधि व्यवसाय का कम से कम 20 वर्ष का अनुभव प्राप्त हो। अध्यक्ष और सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्ष होगा।

(ख) प्रत्येक पर्यावरण न्यायालय में सहायता के लिए कम से कम तीन वैज्ञानिक या तकनीकी विशेषज्ञ होंगे जिन्हें कमिश्नर कहा जाएगा। तथापि, उनकी भूमिका केवल परामर्शदात्री की ही होगी। कमिश्नरों के लिए अर्हताएं अध्याय – नौ में दी गई हैं।

5.(क) प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालय को सिविल मामलों में, जहां पर्यावरण से संबंधित विधिक या संवैधानिक अधिकार के प्रवर्तन सहित पर्यावरण संबंधी सारवान प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हैं, मूल अधिकारिता प्राप्त होगी। इस विषय से संबंधित विवरण अध्याय – नौ में दिया गया है।

(ख) सिविल न्यायालयों की अधिकारिता समाप्त नहीं की गई है।





(ग) पर्यावरण न्यायालय को निम्नलिखित के अधीन की गई अपीलों में अपीलीय अधिकारिता भी प्राप्त होगी:

(i) पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 और उसके अधीन बनाए गए नियम;

(ii) जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 और उसके अधीन बनाए गए नियम;

(iii) वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 और उसके अधीन बनाए गए नियम;

(iv) लोक दायित्व बीमा अधिनियम, 1991।

केन्द्र और राज्य सरकारें भी यह अधिसूचित कर सकेंगी कि किसी अन्य पर्यावरण संबंधी अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन अपील प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालय में भी की जा सकेगी।

6.(क) प्रस्तावित न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन विहित की गई प्रक्रिया का अनुसरण करने के लिए बाध्य नहीं होगा परन्तु प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त द्वारा मार्गदर्शित होगा। न्यायालय, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में अन्तर्विष्ट साक्ष्य के नियमों से भी बाध्य नहीं होगा।

(ख) प्रस्तावित न्यायालय को, अवमानना के लिए दंड देने सहित, जैसाकि अध्याय – नौ में चर्चा की गई है, सिविल न्यायालय की सभी शक्तियां प्राप्त होंगी।

(ग) किसी भी मामले की सुनवाई के लिए गणपूर्ति अध्यक्ष सहित दो सदस्यों से होगी। मामले की सुनवाई के समय कम से कम एक कमिश्नर को भी उपस्थित रहना होगा।

प्रस्तावित न्यायालय सभी प्रकार के, अन्तिम या अन्तर्वर्ती, आदेश पारित कर सकता है। यह क्षतिपूर्ति, प्रतिकर का भी आदेश दे सकता है और व्यादेश (स्थायी, अस्थायी और आदेशात्मक) भी प्रदान कर सकता है। ब्यौरा अध्याय – नौ में दिया गया है।

(घ) पर्यावरण न्यायालय परिसंकटमय पदार्थ के मामले में निश्चित दायित्व के सिद्धान्त 'पौल्यूटर पेयज सिद्धान्त', पूर्वावधानी का सिद्धान्त, निवारण सिद्धान्त, लोक विश्वास का सिद्धान्त, अन्तरपीढ़ी साम्या और अविरत विकास के सिद्धान्त का अनुसरण करेगा।

(ङ) प्रस्तावित न्यायालय के समक्ष, उसकी मूल अधिकारिता में, सुने जाने का अधिकार इतना ही विस्तृत होगा जितना कि आज यह उच्च न्यायालय/उच्चतम न्यायालय के समक्ष पर्यावरणीय मामलों में रिट अधिकारिता में है।

(च) प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालय को, पर्यावरण से संबंधित मामलों में, योजनाएं बनाने की, उन पर निगरानी रखने की तथा उन्हें उपांतरित करने की भी शक्ति प्राप्त होगी।

7. इन पर्यावरण न्यायालयों की स्थापना के लिए प्रस्तावित अधिनियम में अन्य अनुषंगिक और प्रकीर्ण उपबंध भी, जो आवश्यक हैं, उदाहरण के लिए अन्य कर्मचारियों, निधियों या बैठक के स्थानों आदि के बारे में उपबंध, अन्तर्विष्ट होने चाहिए।

8.(क) प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालय की अपीलीय शक्तियों की दृष्टि से निम्नलिखित में–

(i) पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 और उसके अधीन बनाए गए नियम;

(ii) जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 और उसके अधीन बनाए गए नियम;

(iii) वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 और उसके अधीन बनाए गए नियम;

(iv) लोक दायित्व बीमा अधिनियम, 1991,

अन्तर्विष्ट अपीलों से संबंधित उपबंधों में उपयुक्त संशोधन किए जाने की आवश्यकता है।

(ख) प्रस्तावित अधिनियम में यह उपबंध भी अन्तर्विष्ट होना चाहिए, अर्थात्–

''जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 की धारा 28 में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, राज्य बोर्ड द्वारा धारा 25, 26 और 27 के अधीन पारित आदेशों से व्यथित कोई भी व्यक्ति पर्यावरण न्यायालय में अपील दायर कर सकेगा।''

9. राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995 और राष्ट्रीय पर्यावरण अपील प्राधिकरण अधिनियम, 1997 निरसित किए जा सकेंगे और इन अधिनियमों में अन्तर्विष्ट अधिकरण और अपील प्राधिकरण के कृत्यों और शक्तियों संबंधी उपबंधों को पर्यावरण न्यायालय की स्थापना के लिए प्रस्तावित अधिनियम में समुचित रूप से स्थानांतरित किया जा सकेगा।

10. प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालय के आदेशों के विरूद्ध अपील, तथ्यों तथा विधि के प्रश्न पर उच्चतम न्यायालय में की जाएगी।

11. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226, अनुच्छेद 227 के अधीन उच्च न्यायालयों की और संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय की शक्तियां समाप्त नहीं होंगी।

हम इस रिपोर्ट को तैयार करने में, भारत के विधि आयोग के अंशकालिक सदस्य डा० एस० मुरलीधर द्वारा दिए गए योगदान की सराहना करते हैं।

हम तद्नुसार सिफारिश करते हैं।

ह०

(न्यायामूर्ति एम० जगन्नाथ राव)

अध्यक्ष

ह०

(डा० एन०एम० घटाटे)

उपाध्यक्ष

ह०

(टी०के० विश्वनाथन)

सदस्य-सचिव

तारीख 23.09.2003

MGIPMRND—3743LAW—5-9-2005.

A K Srivastava
2332716b(6)

PLD-92-CLXXXVI (Hindi)
75—2005 (DSK-IV)

*Price* : Rs. 570.00 *Foreign* £ 8.38 or *cents* 11.87.

2743/(aa)

PRINTED BY THE MANAGER, GOVT. OF INDIA PRESS, MINTO ROAD, NEW DELHI
AND PUBLISHED BY THE CONTROLLER OF PUBLICATIONS, DELHI—2005.